गद्य गरिमा

पाठ्य पुस्तक

बी.एससी- B.Sc

I Semester B.Sc, B.V.Sc, M.Sc, (Biological Sciences), B.S (IV), B.O.C. & B.Sc (Honors) - All B.Sc Courses Language under SEP.

प्रथम सेमिस्टर - First semester

संपादक

डॉ.सुलोचना एच.ऐ.

डॉ. रोहिणीबाई एस.

प्रकाशक

प्रसारांग

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय

बेंगलूरु -560001

GADHYA GARIMA
Edited By:
Dr.Sulochana H.I.
Dr. Rohinibai S.

बेंगलुरु नगर विश्वविध्यालय

प्रथम सस्करण - 2024

Page - 88

प्रधान संपादक
प्रो.शेखर

मूल्य:-

प्रकाशक
प्रसारंग
बेंगलुरु नगर विश्वविद्यालय
बेंगलुरु - 560001

भूमिका

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय में 2024-25 शैक्षिक वर्ष से एस.ई .पी - 24 नियम(पद्धति) के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए नया पाठ्यक्रम जारी किया जा रहा हैं|

इस पाठ्यक्रम की संरचना एसी की गयी है कि इस के अध्ययन के पश्चात् हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी यह जान सके किसाहित्य का विश्लेषण और सराहना कैसे किया जाए और दिए गए पाठ को पढने की समझ किस प्रकार विकसित की जाए, ताकि विद्यार्थी भाषा और साहित्य के उद्येश से भली-भांति परिचित हो सके| जैसे विज्ञान और आदि विषयों के अध्ययन के साथ यह भी अधिक उपयोगी हैं| एस.ई. पी सेमिस्टर पद्धति के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण किया गया हैं|

इस प्रष्ठभूमि में हिन्दी अध्ययन -मंडल ने विभागाध्यक्ष डॉ. शेखर जी के मार्गदर्शन में पाठ्य -पुस्तक का निर्माण किया है |

विश्वास है कि यह गध्य संकलन छात्र समुदाय के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा| विश्वविद्यालय की यह शुभेच्छा है कि साहित्य और समाज शास्त्रीय विषयों के लिए भी अधिक उपयोगी और प्रासंगिक लगे| इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देने वाले सभी के प्रति विश्वविद्यालय आभारी है |

प्रो.लिंगराज गांधी
कुलपति
बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरु - 560001

प्रधान संपादक की कलम से...

बेंगलूरू नगर विश्वविद्यालय शैक्षिक क्षेत्र में नये-नये विषयों को अपने अध्ययन की सीमा में लेरहा है। अध्ययन को नयी राज्य शिक्षा नीति - 2024 के अनुसार प्रस्तुति करने का प्रयत्न हो रहा है। साहित्यिक विषयों को आज की बदलती परिस्थिति के अनुसार रखने के उद्देश्य से पाठ्य क्रम को प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस.ई.पी से मिस्टर पद्धति के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण किया जा रहा है। इस पाठ्यपुस्तक के निर्माण में योगदेनेवाले सम्पादकों के प्रति मैं आभारी हूँ।

इस नयी पाठ्यपुस्तक के निर्माण में कुलपति महोदय डॉ. लिंगराज गांधीजी ने अत्यधिक प्रोत्साहन दिया, तदर्थ मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

इस पाठ्यक्रम को नयी शिक्षानीति के ध्येयोद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया गया है । गद्य के विविध आयामों को इस पाठ्यपुस्तक में शामिल किया गया । आशा है कि सभी विद्यार्थीगण इस से अवश्य लाभान्वित होंगे ।

प्रो. शेखर
अध्यक्ष (**बी.ओ.एस**.)
बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरु - 560001

अनुक्रमणिका

			प्र.सं
1.	परदा (कहानी)	यशपाल	6 - 17
2.	नीलू (निबंध)	महादेवी वर्मा	18 - 28
3.	स्वामी विवेकानंद (जीवनी)	प्रेमचंद	29 - 38
4.	देवताओं के अंचलमें (यात्रा वृत्तांत)	सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'	39 - 55
5.	चिकित्सा का चक्कर (व्यंग्य)	बेढब बनारसी	56 - 66
6.	माध्यम (कहानी)	शशिप्रभाशस्त्री	67 - 79
7.	दो गौरैया (बाल-साहित्य)	भीष्म साहनी	80 - 88
8.	वैज्ञानिक शब्दावली		89 - 90

1. परदा

यशपाल

लेखक परिचय: यशपाल हिन्दी के प्रमुख कहानीकारों में से एक है। इनका जन्म दिसंबर, सन् 1903 ई० को पंजाब के फीरोजपुर छावनी में हुआ। इनकी माता का नाम श्रीमती प्रेमदेवी था। जबकि इनके पिता का नाम हीरालाल, जो एक साधारण कारोबारी व्यक्ति थे। सन् 1921 में फीरोजपुर जिले से मैट्रिक परीक्षा में प्रथम आकर उन्होंने अपनी कुशादा प्रतिभा का परिचय दिया। सन् 1921 में ही इन्होंने स्वदेशी आंदोलन में सहपाठी लाजपतराय के साथ जमकर भाग लिया। इन्हें लाजपतराय के साथ जमकर भाग लिया । इन्हें सरकार की ओर से प्रथम आने पर छात्रवृत्ति भी मिली। परंतु न केवल इन्होंने उस छात्रवृत्ति को ठुकरा दिया। बल्कि सरकारी कॉलेज में नाम लिखवाना भी मंजूर नही किया। शीघ्र ही यशपाल काँग्रेस से उदासीन हो गए। इन्होंने पंजाब के राष्ट्रीय नेता लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित लाहौर के नेशनल कॉलेज में दाखिला ले लिया। कॉले लेज के विधार्थी-जीवन में ही ये क्रांतिकारी वन गए। उन्होंने हिन्दी साहित्य की सेवा साहित्यकार और प्रकाशक दोनों रूपों में की। 26 दिसंबर 1976 में उनकी मृत्यु हो गई।

कहानी संग्रह :- 'पिजरे की उडान', वो दुनिया, 'तर्क का तूफान', 'फूलों" का कुर्ता, धर्म युद्ध खच्चर और आदमी', ।

उपन्यास :- 'दादा कॉमरेड', 'देशद्रोही, दिव्या, " मनुष्य के रूप', ' झूठा सच', मेरी तेरी उसकी बात?

व्यंग्य लेख :- चक्कर क्लब ।

साहित्यिक विशेषता :- यशवाल के लेखन की प्रमुख विधा उपन्यास है, लेकिन अपने लेखन की शुरुआत उन्होंने कहानियों से ही की। यशपाल ने अपने कथा साहित्य में सामाजिक यर्थाथ का चित्रण किया है।

भाषा-शैली :- भाषा के बारे में यशपाल जी का बड़ा की उदार दृष्टिकोण रहा है। उन्होंने उर्दू, अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्दों से कभी परहेज नहीं किया।अतः उन्होंने इस कहानी में भाषा का सरल, सहज एवं स्वाभाविक रूप में प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने वर्णनात्मक शैली के साथ-साथ संवादात्मक शैली का भी सफल प्रयोग किया है।

चौधरी पीरबख़्श के दादा चुंगी के महकमे में दारोग़ा थे। आमदनी अच्छी थी। एक छोटा, पर पक्का मकान भी उन्होंने बनवा लिया। लड़कों को पूरी तालीम दी। दोनों लड़के एंट्रेंस पास कर रेलवे में और डाकख़ाने में बाबू हो गए। चौधरी साहब की ज़िंदगी में लड़कों के ब्याह और बाल-बच्चे भी हुए, लेकिन ओहदे में ख़ास तरक़्क़ी न हुई; वही तीस और चालीस रुपए माहवार का दर्जा।

अपने ज़माने की याद कर चौधरी साहब कहते- वो भी क्या वक़्त थे! लोग मिडिल पास कर डिप्टी कलट्टरी करते थे और आजकल की तालीम है कि एंट्रेंस तक इंग्रेज़ी पढ़कर लड़के तीस-चालीस से आगे नहीं बढ़ पाते। बेटों को ऊँचे ओहदों पर देखने का अरमान लिए ही उन्होंने आँखें मूँद लीं।

इंशाअल्ला, चौधरी साहब के कुनबे में बरकत हुई। चौधरी फ़ज़ल-क़ुरबान रेलवे में काम करते थे। अल्लाह ने उन्हें चार बेटे और तीन बेटियाँ थीं। चौधरी इलाहीबख़्श डाकख़ाने में थे। उन्हें भी अल्लाह ने चार बेटे और दो लड़कियाँ बख़्शीं।

चौधरी-ख़ानदान अपने मकान को हवेली पुकारता था। नाम बड़ा देने पर भी जगह तंग ही रही। दारोग़ा साहब के ज़माने में ज़नाना भीतर था और बाहर बैठक में वे मोढ़े पर बैठ नैचा गुड़गुड़ाया करते। जगह की तंगी की वजह से उनके बाद बैठक भी ज़नाने में शामिल हो गई और घर की ड्योढ़ी पर परदा लटक गया। बैठक न रहने पर भी घर की इज़्ज़त का ख़याल था, इसलिए परदा बोरी के टाट का नहीं, बढ़िया क़िस्म का रहता।

ज़ाहिरा दोनों भाइयों के बाल-बच्चे एक ही मकान में रहने पर भी भीतर सब अलग-अलग था। ड्योढ़ी का परदा कौन भाई लाए? इस समस्या का हल इस तरह हुआ कि दारोग़ा साहब के ज़माने की पलंग की रंगीन दरियाँ एक के बाद एक ड्योढ़ी में लटकाई जाने लगीं।

तीसरी पीढ़ी के ब्याह-शादी होने लगे। आख़िर चौधरी-ख़ानदान की औलाद को हवेली छोड़ दूसरी जगहें तलाश करनी पड़ी। चौधरी इलाहीबख़्श के बड़े साहबज़ादे एंट्रेंस पास कर डाकख़ाने में बीस रुपए की क्लर्की पा गए। दूसरे साहबज़ादे मिडिल पास कर अस्पताल में कम्पाउंडर बन गए। ज्यों-ज्यों ज़माना गुज़रता जाता, तालीम और नौकरी दोनों मुश्किल होती जाती। तीसरे बेटे होनहार थे। उन्होंने वज़ीफ़ा पाया। जैसे-तैसे मिडिल कर स्कूल में मुदर्रिस हो देहात चले गए।

चौथे लड़के पीरबख़्श प्राइमरी से आगे न बढ़ सके। आजकल की तालीम माँ-बाप पर ख़र्च के बोझ के सिवा और है क्या? स्कूल की फ़ीस हर महीने, और किताबों, कापियों और नक़्शों के लिए रुपए-ही-रुपए!

चौधरी पीरबख़्श का भी ब्याह हो गया। मौला के करम से बीवी की गोद भी जल्दी ही भरी। पीरबख़्श ने रोज़गार के तौर पर ख़ानदान की

इज़्ज़त के ख़याल से एक तेल की मिल में मुंशीगिरी कर ली। तालीम ज़ियादा नहीं तो क्या, सफ़ेदपोश ख़ानदान की इज़्ज़त का पास तो था। मज़दूरी और दस्तकारी उनके करने की चीज़ें न थीं। चौकी पर बैठते। क़लम-दवात का काम था।

बारह रुपया महीना अधिक नहीं होता। चौधरी पीरबख़्श को मकान सितवा की कच्ची बस्ती में लेना पड़ा। मकान का किराया दो रुपया था। आसपास ग़रीब और कमीने लोगों की बस्ती थी। कच्ची गली के बीचों-बीच, गली के मुहाने पर लगे कमेटी के नल से टपकते पानी की काली धार बहती रहती, जिसके किनारे घास उग आई थी। नाली पर मच्छरों और मक्खियों के बादल उमड़ते रहते। सामने रमज़ानी धोबी की भट्टी थी, जिसमें से घुआँ और सज्जी मिले उबलते कपड़ों की गंध उड़ती रहती। दायीं ओर बीकानेरी मोचियों के घर थे। बायीं ओर वर्कशाप में काम करने वाले कुली रहते!

इस सारी बस्ती में चौधरी पीरबख़्श ही पढ़े-लिखे सफ़ेदपोश थे। सिर्फ़ उनके ही घर की ड्योढ़ी पर परदा था। सब लोग उन्हें चौधरीजी, मुंशीजी कहकर सलाम करते। उनके घर की औरतों को कभी किसी ने गली में नहीं देखा। लड़कियाँ चार-पाँच बरस तक किसी काम-काज से बाहर निकलतीं और फिर घर की आबरू के ख़याल से उनका बाहर निकलना मुनासिब न था। पीरबख़्श ख़ुद ही मुस्कुराते हुए सुबह-शाम कमेटी के नल से घड़े भर लाते।

चौधरी की तनख़्वाह पंद्रह बरस में बारह से अठारह हो गई। ख़ुदा की बरकत होती है, तो रुपए-पैसे की शक्ल में नहीं, आस-औलाद की शक्ल में

होती है। पंद्रह बरस में पाँच बच्चे हुए। पहले तीन लड़कियाँ और बाद में दो लड़के।

दूसरी लड़की होने को थी तो पीरबख़्श की वाल्दा मदद के लिए आईं। वालिद साहब का इंतिक़ाल हो चुका था। दूसरा कोई भाई वाल्दा की फ़िक्र करने आया नहीं; वे छोटे लड़के के यहाँ ही रहने लगीं।

जहाँ बाल-बच्चे और घर-बार होता है, सौ क़िस्म की झंझटें होती ही हैं। कभी बच्चे को तकलीफ़ है, तो कभी जच्चा को। ऐसे वक़्त में क़र्ज़ की ज़रूरत कैसे न हो? घर-बार हो, तो क़र्ज़ भी होगा ही।

मिल की नौकरी का क़ायदा पक्का होता है। हर महीने की सात तारीख़ को गिनकर तनख़्वाह मिल जाती है। पेशगी से मालिक को चिढ़ है। कभी बहुत ज़रूरत पर ही मेहरबानी करते। ज़रूरत पड़ने पर चौधरी घर की कोई छोटी-मोटी चीज़ गिरवी रखकर उधार ले आते। गिरवी रखने से रुपए के बारह आने ही मिलते। ब्याज मिलाकर सोलह आने हो जाते और फिर चीज़ के घर लौट आने की संभावना न रहती।

मुहल्ले में चौधरी पीरबख़्श की इज़्ज़त थी। इज़्ज़त का आधार था, घर के दरवाज़े पर लटका परदा। भीतर जो हो, परदा सलामत रहता। कभी बच्चों की खींच-खाँच या बेदर्द हवा के झोंकों से उसमें छेद हो जाते, तो पर्दे की आड़ से हाथ सुई-धागा ले उसकी मरम्मत कर देते।

दिनों का खेल! मकान की ड्योढ़ी के किवाड़ गलते-गलते बिलकुल गल गए। कई दफ़े कसे जाने से पेच टूट गए और सुराख ढीले पड़ गए। मकान मालिक सुरजू पाँडे को उसकी फ़िक्र न थी। चौधरी कभी जाकर कहते-सुनते तो उत्तर मिलता- “कौन बड़ी रक़म थमा देते हो? दो रुपल्ली

किराया और वह भी छः-छः महीने का बक़ाया। जानते हो लकड़ी का क्या भाव है। न हो मकान छोड़ जाओ। आख़िर किवाड़ गिर गए। रात में चौधरी उन्हें जैसे-तैसे चौखट से टिका देते। रात-भर दहशत रहती कि कहीं कोई चोर न आ जाए।

मुहल्ले में सफ़ेदपोशी और इज़्ज़त होने पर भी चोर के लिए घर में कुछ न था। शायद एक भी साबित कपड़ा या बर्तन ले जाने के लिए चोर को न मिलता; पर चोर तो चोर है। छिनने के लिए कुछ न हो, तो भी चोर का डर तो होता ही है। वह चोर जो ठहरा!

चोर से ज़ियादा फ़िक्र थी आबरू की। किवाड़ न रहने पर परदा ही आबरू का रखवारा था। वह परदा भी तार-तार होते-होते एक रात आँधी में किसी भी हालत में लटकने लायक़ न रह गया। दूसरे दिन घर की एकमात्र पुश्तैनी चीज़ दरी दरवाज़े पर लटक गई। मुहल्ले वालों ने देखा और चौधरी को सलाह दी- “अरे चौधरी, इस ज़माने में दरी यूँ काहे ख़राब करोगे? बाज़ार से ला टाट का टुकड़ा न लटका दो!” पीरबख़्श टाट की क़ीमत भी आते-जाते कई दफ़े पूछ चुके थे। दो गज़ टाट आठ आने से कम में न मिल सकता था। हँसकर बोले- होने दो क्या है? हमारे यहाँ पक्की हवेली में भी ड्योढ़ी पर दरी का ही परदा रहता था।

कपड़े की महँगाई के इस ज़माने में घर की पाँचों औरतों के शरीर से कपड़े जीर्ण होकर यूँ गिर रहे थे, जैसे पेड़ अपनी छाल बदलते हैं; पर चौधरी साहब की आमदनी से दिन में एक दफ़े किसी तरह पेट भर सकने के लिए आटा के अलावा कपड़े की गुंजाइश कहाँ? ख़ुद उन्हें नौकरी पर

जाना होता। पायजामे में जब पैबंद सँभालने की ताब न रही, मारकीन का एक कुर्ता-पायजामा ज़रूरी हो गया, पर लाचार थे।

गिरवी रखने के लिए घर में जब कुछ भी न हो, ग़रीब का एकमात्र सहायक है पंजाबी ख़ान। रहने की जगह भर देखकर वह रुपया उधार दे सकता है। दस महीने पहले गोद के लड़के बर्कत के जन्म के समय पीरबख़्श को रुपए की ज़रूरत आ पड़ी। कहीं और कोई प्रबंध न हो सकने के कारण उन्होंने पंजाबी ख़ान बबर अलीख़ाँ से चार रुपए उधार ले लिए थे।

बबर अलीख़ाँ का रोज़गार सितवा के उस कच्चे मुहल्ले में अच्छा-ख़ासा चलता था। बीकानेरी मोची, वर्कशाप के मज़दूर और कभी-कभी रमज़ानी धोबी सभी बबर मियाँ से क़र्ज़ लेते रहते। कई दफ़े चौधरी पीरबख़्श ने बबर अली को क़र्ज़ और सूद की क़िस्त न मिलने पर अपने हाथ के डंडे से ऋणी का दरवाज़ा पीटते देखा था। उन्हें साहूकार और ऋणी में बीच-बचौवल भी करना पड़ा था। ख़ान को वे शैतान समझते थे, लेकिन लाचार हो जाने पर उसी की शरण लेनी पड़ी। चार आना रुपया महीने पर चार रुपया क़र्ज़ लिया। शरीफ़ ख़ानदानी, मुसलमान भाई का ख़याल कर बबर अली ने एक रुपया माहवार की क़िस्त मान ली। आठ महीने में क़र्ज़ अदा होना तय हुआ।

ख़ान की क़िस्त न दे सकने की हालत में अपने घर के दरवाज़े पर फ़जीहत हो जाने की बात का ख़याल कर चौधरी के रोएँ खड़े हो जाते। सात महीने फ़ाक़ा करके भी वे किसी तरह से क़िस्त देते चले गए; लेकिन जब सावन में बरसात पिछड़ गई और बाजरा भी रुपए का तीन सेर मिलने

लगा, क़िस्त देना संभव न रहा। ख़ान सात तारीख़ की शाम को ही आया। चौधरी पीरबख़्श ने ख़ान की दाढ़ी छू और अल्ला की क़सम खा एक महीने की मुआफ़ी चाही। अगले महीने एक का सवा देने का वायदा किया! ख़ान टल गया।

भादों में हालत और भी परेशानी की हो गई। बच्चों की माँ की तबिअत रोज़-रोज़ गिरती जा रही थी। खाया-पिया उसके पेट में न ठहरता। पथ्य के लिए उसको गेहूँ की रोटी देना ज़रूरी हो गया। गेहूँ मुश्किल से रुपए का सिर्फ़ ढाई सेर मिलता। बीमार का जी ठहरा, कभी प्याज़ के टुकड़े या धनिए की ख़ुश्बू के लिए ही मचल जाता। कभी पैसे की सौंफ़, अजवायन, काले नमक की ही ज़रूरत हो, तो पैसे की कोई चीज़ मिलती ही नहीं। बाज़ार में ताँबे का नाम ही नहीं रह गया! नाहक़ इकन्नी निकल जाती है। चौधरी को दो रुपए महँगाई-भत्ते के मिले; पर पेशगी लेते-लेते तनख़्वाह के दिन केवल चार ही रुपए हिसाब में निकले।

बच्चे पिछले हफ़्ते लगभग फ़ाक़े से थे। चौधरी कभी गली से दो पैसे की चौराई ख़रीद लाते, कभी बाजरा उबाल सब लोग कटोरा-कटोरा-भर पी लेते। बड़ी कठिनता से मिले चार रुपयों में से सवा रुपया ख़ान के हाथ में धर देने की हिम्मत चौधरी को न हुई।

मिल से घर लौटते समय वे मंडी की ओर टहल गए। दो घंटे बाद जब समझा, ख़ान टल गया होगा और अनाज की गठरी ले वे घर पहुँचे। ख़ान के भय से दिल डूब रहा था, लेकिन दूसरी ओर चार भूखे बच्चों, उनकी माँ, दूध न उतर सकने के कारण सूखकर काँटा हो रहे गोद के बच्चे और चलने-फिरने से लाचार अपनी ज़ईफ़ माँ की भूख से बिलबिलाती

सूरतें आँखों के सामने नाच जातीं। धड़कते हुए हृदय से वे कहते जाते- मौला सब देखता है, ख़ैर करेगा।

सात तारीख़ की शाम को असफल हो ख़ान आठ की सुबह ख़ूब तड़के चौधरी के मिल चले जाने से पहले ही अपना हंडा हाथ में लिए दरवाज़े पर मौजूद हुआ।

रात-भर सोच-सोचकर चौधरी ने ख़ान के लिए बयान तैयार किया। मिल के मालिक लालाजी चार रोज़ के लिए बाहर गए हैं। उनके दस्तख़त के बिना किसी को भी तनख़्वाह नहीं मिल सकी। तनख़्वाह मिलते ही वह सवा रुपया हाज़िर करेगा। माक़ूल वजह बताने पर भी ख़ान बहुत देर तक ग़ुर्राता रहा- "अम वतन चोड़के परदेस में पड़ा है, ऐसे रुपिया चोड़ देने के वास्ते अम यहाँ नहीं आया है, अमारा भी बाल-बच्चा है। चार रोज़ में रुपिया नई देगा, तो अम तुमारा...कर देगा।

पाँचवें दिन रुपया कहाँ से आ जाता! तनख़्वाह मिले अभी हफ़्ता भी नहीं हुआ। मालिक ने पेशगी देने से साफ़ इनकार कर दिया। छठे दिन क़िस्मत से इतवार था। मिल में छुट्टी रहने पर भी चौधरी ख़ान के डर से सुबह ही बाहर निकल गए। जान-पहचान के कई आदमियों के यहाँ गए। इधर-उधर की बातचीत कर वे कहते- अरे भाई, हो तो बीस आने पैसे तो दो-एक रोज़ के लिए देना। ऐसे ही ज़रूरत आ पड़ी है।

उत्तर मिला- मियाँ, पैसे कहाँ इस ज़माने में! पैसे का मोल कौड़ी नहीं रह गया। हाथ में आने से पहले ही उधार में उठ गया तमाम!

दोपहर हो गई। ख़ान आया भी होगा, तो इस वक़्त तक बैठा नहीं रहेगा—चौधरी ने सोचा, और घर की तरफ़ चल दिए। घर पहुँचने पर सुना,

ख़ान आया था और घंटे-भर तक ड्योढ़ी पर लटके दरी के पर्दे को डंडे से ठेल-ठेलकर गाली देता रहा है! पर्दे की आड़ से बड़ी बीबी के बार-बार ख़ुदा की क़सम खा यक़ीन दिलाने पर कि चौधरी बाहर गए हैं, रुपया लेने गए हैं, ख़ान गाली देकर कहता- नई, बदज़ात चोर बीतर में चिपा है! अम चार घंटे में पिर आता है। रुपिया लेकर जाएगा। रुपिया नई देगा, तो उसका खाल उतारकर बाज़ार में बेच देगा।... हमारा रुपिया क्या अराम का है?

चार घंटे से पहले ही ख़ान की पुकार सुनाई दी- चौदरी! पीरबख़्श के शरीर में बिजली-सी दौड़ गई और वे बिलकुल निस्सत्त्व हो गए, हाथ-पैर सुन्न और गला ख़ुश्क।

गाली दे पर्दे को ठेलकर ख़ान के दुबारा पुकारने पर चौधरी का शरीर निर्जीवप्राय होने पर भी निश्चेष्ट न रह सका। वे उठकर बाहर आ गए। ख़ान आग-बबूला हो रहा था- पैसा नहीं देने का वास्ते चिपता है!..."

एक-से-एक बढ़ती हुई तीन गालियाँ एक-साथ ख़ान के मुँह से पीरबख़्श के पुरखों-पीरों के नाम निकल गईं। इस भयंकर आघात से पीरबख़्श का ख़ानदानी रक्त भड़क उठने के बजाय और भी निर्जीव हो गया। ख़ान के घुटने छू, अपनी मुसीबत बता वे मुआफ़ी के लिए ख़ुशामद करने लगे।

ख़ान की तेज़ी बढ़ गई। उसके ऊँचे स्वर से पड़ोस के मोची और मज़दूर चौधरी के दरवाज़े के सामने इकट्ठे हो गए। ख़ान क्रोध में डंडा फटकार कर कह रहा था- पैसा नहीं देना था, लिया क्यों? तनख़्वाह किदर में जाता? अरामी अमारा पैसा मारेगा। अम तुमारा खाल खींच लेगा। पैसा

नई है, तो घर पर परदा लटका के शरीफ़ज़ादा कैसे बनता?...तुम अमको बीबी का गैना दो, बर्तन दो, कुछ तो भी दो, अम ऐसे नई जाएगा।

बिलकुल बेबस और लाचारी में दोनों हाथ उठा ख़ुदा से ख़ान के लिए दुआ माँग पीरबख़्श ने क़सम खाई, एक पैसा भी घर में नहीं, बर्तन भी नहीं, कपड़ा भी नहीं; ख़ान चाहे तो बेशक उसकी खाल उतारकर बेच ले।

ख़ान और आग हो गया- अम तुमारा दुआ क्या करेगा? तुमारा खाल क्या करेगा? उसका तो जूता भी नई बनेगा। तुमारा खाल से तो यह टाट अच्चा। ख़ान ने ड्योढ़ी पर लटका दरी का परदा झटक लिया। ड्योढ़ी से परदा हटने के साथ ही, जैसे चौधरी के जीवन को डोर टूट गई। वह डगमगाकर ज़मीन पर गिर पड़े।

इस दृश्य को देख सकने की ताब चौधरी में न थी, परंतु द्वार पर खड़ी भीड़ ने देखा–घर की लड़कियाँ और औरते पर्दे के दूसरी ओर घटती घटना के आतंक से आँगन के बीचों-बीच इकट्ठी हो खड़ी काँप रही थीं। सहसा परदा हट जाने से औरतें ऐसे सिकुड़ गई, जैसे उनके शरीर का वस्त्र खींच लिया गया हो। वह परदा ही तो घर-भर की औरतों के शरीर का वस्त्र था। उनके शरीर पर बचे चीथड़े उनके एक-तिहाई अंग ढँकने में भी असमर्थ थे!

जाहिल भीड़ ने घृणा और शरम से आँखें फेर लीं। उस नग्नता की झलक से ख़ान की कठोरता भी पिघल गई। ग्लानि से थूक, पर्दे को आँगन में वापिस फेंक, क्रुद्ध निराशा में उसने "लाहौल बिला...! कहा और असफल लौट गया।

भय से चीख़कर ओट में हो जाने के लिए भागती हुई औरतों पर दया कर भीड़ छँट गई। चौधरी बेसुध पड़े थे। जब उन्हें होश आया, ड्योढ़ी का परदा आँगन में सामने पड़ा था; परंतु उसे उठाकर फिर से लटका देने का सामर्थ्य उनमें शेष न था। शायद अब इसकी आवश्यकता भी न रही थी। परदा जिस भावना का अवलंब था, वह मर चुकी थी।

*****

2. नीलू

महादेवी वर्मा

लेखक परिचय:मूल नाम :महादेवी वर्मा
जन्म :26 मार्च 1907 | फ़र्रूख़ाबाद, उत्तर प्रदेश
निधन :11 सितंबर 1987 | इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश

'आधुनिक युग की मीरा' कही जाने वाली महादेवी वर्मा का जन्म उत्तर प्रदेश के फ़र्रुख़ाबाद में होली के दिन 1907 में हुआ था। उनकी आरंभिक शिक्षा उज्जैन में हुई और एम. ए. उन्होंने संस्कृत में प्रयाग विश्वविद्यालय से किया। बचपन से ही चित्रकला, संगीतकला और काव्यकला की ओर उन्मुख महादेवी विद्यार्थी जीवन से ही काव्य प्रतिष्ठा पाने लगी थीं। वह बाद के वर्षों में लंबे समय तक प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्राचार्या रहीं। वह इलाहाबाद से प्रकाशित 'चाँद' मासिक पत्रिका की संपादिका थीं और प्रयाग में 'साहित्यकार संसद' नामक संस्था की स्थापना की थी।

'निराला वैशिष्ट्य' की स्वामिनी महादेवी वर्मा छायावाद की चौथी स्तंभ भी कही जाती हैं। प्रणय एवं वेदनानुभूति, जड़ चेतन का एकात्म्य भाव, सौंदर्यानुभूति, मूल्य चेतना, रहस्यात्मकता उनकी मुख्य काव्य-वस्तु है। वह प्रधानतः गीति कवयित्री हैं जिनके काव्य में परंपरा और मौलिकता का अद्वितीय समन्वय नज़र आता है। शब्द-निरूपण, वर्ण-विन्यास, नाद-सौंदर्य और उक्ति-सौंदर्य-सभी दृष्टियों से वह भाषा पर सहज अधिकार रखती हैं। उन्होंने अपने काव्य में प्रतीकात्मक संकेत-भाषा का प्रयोग किया है जिसमें छायावादी प्रतीकों के साथ ही मौलिक प्रतीकों का भी कुशल प्रयोग हुआ है। उनका वर्ण-परिज्ञान उनके बिंब-विधान की प्रमुख विशेषता

है। चाक्षुष, श्रव्य, स्पर्शिक बिंबों में उनकी विशेष रुचि रही है। अप्रस्तुत के माध्यम से प्रस्तुत के साम्य गुणों का चित्रण वह बख़ूबी करती हैं। रूपक, अन्योक्ति, समासोक्ति तथा उपमा उनके प्रिय अलंकार हैं। उनके संबंध में कहा गया है कि छायावाद ने उन्हें जन्म दिया था और उन्होंने छायावाद को जीवन दिया।

उन्होंने कविताओं के साथ ही रेखाचित्र, संस्मरण, निबंध, डायरी आदि गद्य विधाओं में भी योगदान किया है। 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्य गीत', 'यामा', 'दीपशिखा', 'साधिनी', 'प्रथम आयाम', 'सप्तपर्णा', 'अग्निरेखा' उनके काव्य-संग्रह हैं। रेखाचित्रों का संकलन 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' में किया गया है। 'शृंखला की कड़ियाँ', 'विवेचनात्मक गद्य', 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध', 'संकल्पिता', 'हिमालय', 'क्षणदा' उनके निबंधों का संकलन है।

वह साहित्य अकादेमी की सदस्यता प्राप्त करने वाली पहली लेखिका थीं। भारत सरकार ने उन्हें पद्म भूषण और पद्म विभूषण पुरस्कारों से सम्मानित किया। उन्हें यामा के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। भारत सरकार ने उनके सम्मान में जयशंकर प्रसाद के साथ युगल डाक टिकट भी जारी किया।

नीलू की कथा उसकी माँ की कथा से इस प्रकार जुड़ी है कि एक के बिना दूसरी अपूर्ण रह जाती है।

उसकी अल्सेशियन माँ उत्तरायण में लूसी के नाम से पुकारी जाती थी। हिरणी के समान वेगवती, साँचे में ढली हुई देह, जिसमें व्यर्थ कहने के लिए एक तोला मांस भी नहीं था। ऊपर काला आभास देनेवाले भूरे पीताभ

रोम, बुद्धिमानी का पता देने वाली काली पर छोटी आँखें, सजग खड़े कान और सघन, रोयेंदार तथा पिछले पैरों के टखनों को छुनेवाली लम्बी पूँछ, सब कुछ उसे राजसी विशेषता देता था। थी भी वह सामान्य कुत्तों से भिन्न।

अल्सेशियन कुत्ता एक ही स्वामी को स्वीकार करता है। यदि परिस्थितियों के कारण एक व्यक्ति का स्वामित्व उसे सुलभ नहीं होता, तो वह सबके साथ सहचर जैसा आवरण करने लगता है। दूसरे शब्दों में, आदेश किसी का नहीं मानता, परन्तु सबके स्नेहपूर्ण अनुरोध की रक्षा में तत्पर रहता है। लूसी की स्थिति भी स्वच्छन्द सहचरी के समान हो गई थी।

उत्तरायण में जो पगडंडी दो पहाड़ियों के बीच से मोटर मार्ग तक जाती थी, उसके अंत में मोटर स्टाप पर एक ही दूकान थी, जिसमें आवश्यक खाद्य सामग्री प्राप्त हो सकती थी। शीतकाल में यह दो पर्वतीय भित्तियों का अन्तराल बर्फ से भर जाता था और उससे पगडंडी के अस्तित्व का चिह्न भी शेष नहीं रहता था। तब दूकान तक पहुँचने में असमर्थ उत्तरायण के निवासी, लूसी के गले में रुपये और सामग्री की सूची के साथ एक बड़ा अँगोछा या चादर बाँधकर उससे सामान लाने का अनुरोध करते थे । वंश परम्परा से बर्फ में मार्ग बना लेने की सहज चेतना के कारण वह सारे व्यवधान पार कर दूकान तक पहुँच जाती । दुकानदार उसके गले से कपड़ा खोलकर रुपया सूची आदि लेने के उपरान्त सामान की गठरी उसके गले या पीठ से बाँध देता और लूसी सारे बोझ के साथ बर्फीला मार्ग पार करती हुई सकुशल लौट आती । किसी-किसी दिन उसे कई बार आना जाना पड़ता था। कभी चीनी मँगवाई और चाय रह गई। कभी आटा याद

रहा और आलू भूल गए । पर लूसी को मँगवानेवालों के भुलक्कड़पन से कोई शिकायत कभी नहीं रही । गले में कपड़ा बाँधते ही वह तीर की तरह दुकान की दिशा में चल देती | उसकी तत्परता के कारण मँगानेवालों में भूलने की प्रवृत्ति बढ़ती ही थी। एक दिन किसी अधिक ऊँचाई पर बसे पर्वतीय ग्राम से बर्फ में भटकता हुआ एक भूटिया कुत्ता दूकान पर आ गया और लूसी से उसकी मैत्री हो गई। उन दोनों में आकृति की वही भिन्नता थी, जो एक तराशी हुई सुडौल मूर्ति और अनगढ़ शिलाखण्ड में होती है, परन्तु दुर्दिन के साथी होने के कारण वे सहचर हो गए ।

उन्हीं सर्दियों में लूसी ने दो बच्चों को जन्म देकर अपनी वंश-वृद्धि की, किन्तु उनमें से एक तो शीत के कारण मर गया और दूसरा अपनी ही जीवन-ऊष्मा के बल पर उस ठिठुरानेवाले परिवेश से जूझने लगा ।

शीतऋतु में प्रायः लकड़बग्घे ऊँचे पर्वतीय अंचल से नीचे उतर आते हैं और बर्फ में भटकते हुए मिल जाते हैं। वैसे तो यह हिंसक जीव कुत्ते से कुछ ही बड़ा होता है, परन्तु कुत्ता इसका प्रिय खाद्य होने के कारण रक्षणीय की स्थिति में आ जाता है।

सामान्य कुत्ते तो लकड़बग्घे को देखते ही स्तब्ध और निर्जीव से हो जाते हैं, अतः उन्हें घसीट ले जाने में इसे कोई प्रयास ही नहीं करना पड़ता। असामान्य भूटिये या अल्सेशियन कुत्ते उससे संघर्ष करते हैं अवश्य, परन्तु अन्ततः पराजित ही होते हैं। ४-५ दिन के बच्चों को छोड़कर लूसी फिर दुकान तक आने-जाने लगी थी।

एक संध्या के झुटपुटे में लूसी ऐसी गई कि फिर लौट ही नहीं सकी। बर्फ के दिनों में साँझ ही से सघन अन्धकार घिर आता है और हवा ऐसी

तुषार बोझिल हो जाती है कि गंध भी वहन नहीं कर पाती। इसी से प्रायः शीतकाल में प्राणशक्ति के कुछ कुंठित हो जाने के कारण कुत्ते लकड़बग्घे के आने की गंध पाने में असमर्थ रहते हैं और उसके अनायास आहार बन जाते हैं। सवेरे बर्फ पर कई बड़े-छोटे पंजों के तथा आगे-पीछे घसीटने-घिसटने के चिह्न देखकर निश्चय हो गया कि लूसी ने बहुत संघर्ष के उपरांत ही प्राण दिये होंगे । बर्फ पर रक्त के पनीले धब्बे ऐसे लगते थे, मानो किसी बालक की ड्राइंग-पुस्तिका के सफेद पृष्ठ पर लाल स्याही की दाबात उलट गई हो ।

लूसी के लिए सभी रोये, परन्तु जिसे सबसे अधिक रोना चाहिए था, वह बच्चा तो कुछ जानता ही न था । एक दिन पहले उसकी आँखें खुली थीं, अतः माँ से अधिक वह दूध के अभाव में शोर मचाने लगा। दुग्ध चूर्ण से दूध बनाकर उसे पिलाया, पर रजाई में भी वह माँ के पेट की उष्णता खोजता और न पाने पर रोता-चिल्लाता रहा। अन्त में हमने उसे कोमल ऊन और अध बुने स्वेटर की डलिया में रख दिया, जहाँ वह माँ के सामीप्य-सुख के भ्रम में सो गया | डलिया में वह ऊन की गेंद जैसा ही लगता था।

आने के समय उसे अपने साथ प्रयाग लाना पड़ा । बड़े होने पर देखा कि वह अपनी माँ के समान ही विशिष्ट है। भूटिये बाप और अल्सेशियन माँ के रूप-रंग ने उसे जो वर्णसंकरता दी थी, उसके कारण न वह अल्सेशियन था, न भूटिया ।

रोमों के भूरे, पीले और काले रंगों के सम्मिश्रण से जो रंग बना था, वह एक विशेष प्रकार का धूपछाँही हो गया था। धूप पड़ने पर एक की

झलक मिलती थी, छाँह में दूसरे की और दिये के उजाले में तीसरे की। कानों की चौड़ाई और नुकीलेपन में भी कुछ नवीनता थी । सिर ऊपर की ओर अन्य कुत्तों के सिर से बड़ा और चौड़ा था और नीचे लम्बोतरा, पर सुडोल। पूँछ अल्सेशियन कुत्तों की पूँछ के समान सघन रोमों से युक्त, पर ऊपर की ओर मुड़ी कूंडलीदार थी। पैर अल्सेशियन कुत्ते के पैरों के समान लम्बे, पर पंजे भूटिये के समान मजबूत चौड़े ओर मुड़े हुए नाखूनों से युक्त थे। शरीर में ऊपर का भाग चौड़ा, पर नीचे का पतले पेट के कारण हल्का ओर तीव्र गति का सहायक था । आँखें न काली थीं, न भूरी और न कंजी । उन गोल और काली कोरवाली आँखों का रंग शहद के रंग के समान था, जो धूप में तरल सुनहला हो जाता था और छाया में जमे हुए मधु-सा पारदर्शी लगता था ।

आकृति की विशेषता के साथ उसके बल और स्वभाव में भी विशेषता थी। ऊँची दीवार को भी वह एक छलाँग में पार कर लेता था। गले का स्वर इतना भारी, मन्द और गूँजनेवाला था कि रात्रि में उसका एक बार भौंकना भी वातावरण की स्तब्धता को कम्पित कर देता था । अन्य कुत्तों के समान खाने के लिए लालायित रहना, प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए पूँछ हिलाना, कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए चाटना, याचक के दीनभाव से स्वामी के पीछे-पीछे घूमना, अकारण भौंकना, काटना आदि प्रकृतिदत्त स्वान-गुणों का उसमें सर्वथा अभाव था।

मैंने अनेक कुत्ते देखे और पाले हैं, किन्तु कुत्ते के दैन्य से रहित ओर उसके लिए अलभ्य दर्प से युक्त मैंने केवल नीलू को ही देखा है। उसके प्रिय से प्रिय खाद्य को भी यदि अवज्ञा के साथ फेंककर दिया जाता, तो वह उसकी ओर देखता भी नहीं, खाना दूर की बात है।

यदि उसे किसी बात पर झिड़क दिया जाता, तो बिना बहुत मनाये वह मेरे सामने ही न आता ।

विगत बारह वर्षों से उसका बैठने का स्थान मेरे घर का बाहरी बरामदा ही रहा, जिसकी ऊपरी सीढ़ी पर पोर्टिको के सामने बैठकर वह प्रत्येक आने-जानेवाले का निरीक्षण करता रहता। मुझसे मिलनेवालों में वह प्रायः सबको पहचानता था। किसी विशेष परिचित को आया देखकर वह सदर्प धीरे-धीरे भीतर आकर मेरे कमरे के दरवाजे पर खड़ा हो जाता। उसका इस प्रकार आना ही मेरे लिए किसी मित्र की उपस्थिति की सूचना थी । मुझसे "आ रही हूँ" सुनने के उपरांत वह पुनः बाहर अपने निश्चित स्थान पर जा बैठता ।

न जाने किस सहज चेतना से वह अपरिचित या असमय आये व्यक्ति को जान लेता था तब नितान्त निरपेक्ष और उदासीन भाव से उसकी घंटी बजाना, नौकर का आकर समाचार ले जाना आदि देखता रहता।

कुत्ते भाषा नहीं जानते ध्वनि पहचानते हैं। नीलू का ध्वनि ज्ञान इतना विस्तृत और गहरा था कि उससे कुछ कहना भाषा जाननेवाले मनुष्य से बात करने के समान हो जाता था| बाहर या रास्ते में घूमते हुए यदि कोई उससे कह देता "गुरुजी तुम्हें ढूँढ़ रही थीं नीलू" तो वह विद्युत गति से चहारदीवारी कूदकर मेरे कमरे के सामने आदेश की प्रतीक्षा में आकर खड़ा हो जाता। फिर 'कोई काम नहीं है, जाओ' कहने के पहले वह मूर्तिवत् एक स्थिति में ही खड़ा रह जाता। कभी-कभी मैं किसी कार्य में

व्यस्त होने के कारण उसकी उपस्थिति जान ही नहीं पाती और उसे बहुत समय तक बिना हिले-डुले खड़ा रहना पड़ता ।

हिंसक और क्रोधी भूटिये बाप और आखेटप्रिय अल्सेशियन माँ से जन्म पाकर भी उसमें हिंसा प्रवृत्ति का कोई चिह्न नहीं था। तेरह वर्ष के दीर्घ जीवन में भी उसे किसी पशु-पक्षी पर झपटते या मारते नहीं देखा गया । उसका यह स्वभाव मेरे लिए ही नहीं सब देखनेवालों के लिए आश्चर्य की घटना थी ।

मेरे बँगले के रोशनदानों में प्राय: गौरैय्या तिनकों से घोंसला बना लेती हैं। मुझे उनके परिश्रमपूर्वक बनाये हुए घोंसले उजाडना अच्छा नहीं लगता, अतः कालान्तर से उनमें अण्डों और पक्षि-शावकों की सृष्टि बस जाती है। कुछ-कुछ अंकुर जैसे पंख निकलते ही वे पक्षि-शावक उड़ने के असफल प्रयास में रोशनदानों से नीचे गिरने लगते। इन दिनों नीलू उनके सतर्क पहरेदार का कर्तव्य संभाल लेता था । उसके भय से कोई भी अन्य कृत्ता-बिल्ली उन नादान उड़ने-गिरनेवालों को हानि पहुँचाने का साहस नहीं कर पाता था । कभी-कभी बहुत छोटे पक्षि-शावकों को पुनः घोंसले में रखवाने के लिए वह उन्हें हौले से मुख में दबाकर मेरे पास ले आता था । जब तक रोशनदान में सीढ़ी लगवाकर मैं उस बच्चे को घोंसले में पहुँचाने की व्यवस्था न कर लेती, तब तक वह या तो बड़ी कोमलता से उसे मुह में दबाये खड़ा रहता या मेरे हाथ में देकर प्रतीक्षा की मुद्रा में देखता रहता। सवेरे नियमानुसार जब मैं मोर खरगोश आदि को दाना देने निकलती, तब वह, चाहें जाड़ा हो चाहे बरसात, मुझे दरवाजे पर ही मिलता और मेरे साथ-साथ घूमता| पक्षियों के कक्ष में दो फुट ऊँची दीवार पर जाली लगी हुई है। नीलू दीवार पर दोनों पंजे रखकर खड़ा हो जाता और

अपनी गोल आँखें घुमाकर मानो प्रत्येक कक्ष और उसमें रहनेवालों का निरीक्षण-परीक्षण करता रहता । उससे इस नियम में कभी व्यतिक्रम नहीं पड़ा ।

उसका रात का कर्तव्य भी स्वेच्छा-स्वीकृत और निश्चित था| सबके सो जाने पर वह, गर्मियों में बाहर लॉन पर और सर्दियों में बरामदे में तख्त पर बैठकर पहरेदारी का कार्य करता । रात में कई-कई बार वह पूरे कम्पाउण्ड का और पशु-पक्षियों के घर का चक्कर लगाता रहता । रात चाहे उजाली हो चाहे बादल गरज रहे हों, चाहे आँधी चल रही हो, उसके चक्कर को विराम नहीं था। रात के सन्नाटे में उसके मन्द-गम्भीर स्वर से ही हम अनुमान लगा पाते थे कि वह किस कोने में पहरा दे रहा है ।

खरगोश घरती के भीतर सुरंग जैसे लम्बे और दोनों ओर द्वार वाले बिल खोद लेते हैं। एक रात मेरे खरगोश बिल खोदते खोदते पड़ोस के दूसरे कम्पाउंण्ड में जा निकले और उनमें से कई जो इस अभियान में अगुआ थे, जंगली बिल्ले द्वारा क्षत-विक्षत कर दिए गए । सुरंग से बाहर आनेवालों का जो हाल होता है, उससे भीतर रहने वाले अनजान रहते हैं, अतः एक के पीछे एक निकलते हुए खरगोशों में सभी को मार्जारी या शृंगाल का आहार बन जाना पड़ता । किन्तु उनके सौभाग्य से पहरे के नित्यक्रम में घूमते हुए नीलू ने संभवत: पत्तियों की सरसराहट से सजग होकर चहारदीवारी के पार देखा होगा और शीत की कुहराच्छन्न रात की मलिन चाँदनी में भी उसने खरगोशों के संकट को पहचान लिया होगा ।

उसके कूदकर दूसरी ओर पहुँचते ही बिल्ला तो भाग गया, परन्तु खरगोशों को बाहर निकलने से रोकने के लिए वह रात भर ओस से भीगता हुआ सुरंग के द्वार पर खड़ा रहा ।

यह परोपकार नीलू के लिए बहुत महँगा पड़ा, क्योंकि उसे सर्दी लगने से न्यूमोनिया हो गया और कई दिनों तक इंजेक्शन दवा आदि का कष्ट झेलना पड़ा । वैसे वह शान्त भाव से कड़वी दवा भी पी लेता था और सुई भी लगवा लेता था ।

एक बार जब मोटर-दुर्घटना में आहत हो मुझे मार्ग से ही अस्पताल जाना पड़ा, तब सन्ध्या तक मेरी प्रतीक्षा करके ओर कपड़े, चादर, कम्बल आदि सामान अस्पताल में ले जानेवालों की हड़बड़ी देखकर उसकी सहज चेतना ने किसी अनिष्ट का आभास पा लिया।

जो भी उस संध्या को मेरे बँगले पर पहुँचा, वह नीलू की विषादमयी निश्चेष्ट मुद्रा देखकर विस्मित हुए बिना नहीं रहा।

जब तीन दिन तक उसने न कुछ खाया न पिया, तब डाक्टर से अनुमति लेकर उसे अस्पताल लाया गया ।

पट्टियों के घटाटोप में मुझे अच्छी तरह देखने के लिए वह पलंग के चारों ओर घूमने लगा और फिर आश्वस्त होकर प्रहरी की चिरपरिचित मुद्रा में मेरे पलंग के नीचे जा बैठा। दो घंटे बाद बहुत समझाने-पुचकारने के उपरान्त ही उसे घर पहुँचाया जा सका।

तब से हर दूसरे दिन अस्पताल न ले जाने पर वह अनशन आरम्भ कर देता। इस प्रकार अस्पताल में भी वह नियमित रूप से मिलने

आनेवालों मे गिना जाने लगा और डाक्टर, नर्सें सब उससे परिचित हो गए।

नीलू को चौदह वर्ष का जीवन मिला था और जन्म से मृत्यु के क्षण तक वह मेरे पास ही रहा, अतः उससे सम्बद्ध घटनाओं ओर संस्मरणों की संख्या बहुत अधिक है ।

कुत्तों में वह केवल कजली के सामीप्य से ही प्रसन्न रहता था, परन्तु कजली और बादल एक क्षण के लिए भी एक-दूसरे से अलग नहीं रह सकते थे। परिणामतः नीलू बेचारा एकाकी ही रहा।

जीवन के समान उसकी मृत्यु भी दैन्य से रहित थी "कुत्ते की मौत मरना" कहावत है, परन्तु यदि नीलू के समान शांत निर्लिप्त भाव से कोई मृत्यु का सामना कर सके, तो ऐसी मृत्यु मनुष्य को भी काम्य होगी ।

मेरे पास अनेक जीव-जन्तु हैं, परन्तु जिसके बुरा मान जाने की मुझे चिन्ता हो, ऐसा अब कोई नहीं है।

*****

3. स्वामीविवेकानंद

प्रेमचंद

लेखक परिचय: प्रेमचंद (1880-1936) आधुनिक हिंदी साहित्य के युग प्रवर्तक उपान्यासकार और कहानीकार हैं । उनका कथा साहित्य आदर्शोन्मुख यथार्थवादी है । मानसरोवर कथा संकलन और 'गोदान', 'निर्मला', 'गवन', आदि उनके उपन्यास उल्लेखनीय हैं ।

प्रस्तुत जीवनी 'रवामी विवेकानंद' प्रेमचंद के बालोपयोगी साहित्यमाला से ली गयी है । भारत की आध्यात्मिक चेतना स्वामी विवेकानंद की जीवनी यहाँ प्रस्तुत की गयी है। इसमें विवेकानंदजी के महान चरित्र और दार्शनिक चिंतन पर प्रकाश डाला गया है।

भारत के नवजागरण की शंख ध्वनि करने वाले गहापुरुषों में स्वामी विवेकानंद का स्थान अद्‌वितीय है । उनका दिव्य संदेश वस्तुतः भारत के लिए ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व के लिए नए आध्यात्मिक उत्खान का उद्‌घोष स्वामी विवेकानंद जी का जन्म सन् 1863 ई. में हुआ। बचपन में उनका नाम नरेंद्र नाथ था। वे प्रारंभ से ही होनहार दिखाई देते थे। उन्होंने अंग्रेजी स्कूलों में शिक्षा पाई और सन् 1884 ई. में बी.ए. की डिग्री प्राप्त की। बचपन से ही उनके अंदर एक प्रबल आध्यात्मिक भूख थी। कुछ दिनों तक वे ब्रह्म समाज के अनुयायी रहे । वे नित्य प्रार्थना में सम्मिलित होते । गला बहुत ही अच्छा होने के कारण कीर्तन-समाज में उनका बड़ा आदर था । पर ब्रह्म समाज के सिद्‌धांत उनकी प्यास न बुझा सके । अतः सत्य की खोज में वे इधर-उधर भटकने लगे। उन दिनों स्वामी रामकृष्ण परमहंस के प्रति लोगों की बड़ी श्रद्‌धा थी । नवयुवक नरेंद्र नाथ ने भी उनके सत्संग से लाभ उठाना प्रारंभ किया और धीरे-धीरे

उनके उपदेशों से वे इतने प्रभावित हुए कि उनकी भक्त-मंडली में सम्मिलित हो गए । उस सच्चे गुरु से अध्यात्म तत्व और वेदान्त रहस्य पाकर युवक नरेन्द्रजी की आध्यात्मिक पिपासा शांत हुई। उनकी गुरु भक्ति गुरु पूजा की सीमा तक पहुँच गई थी । जब कभी वे परमहंस जी की चर्चा करते तो एक-एक शब्द से श्रद्धा और सम्मान टपकता ।

स्वामी विवेकानंद ने गुरुदेव के प्रथम दर्शन का वर्णन इस प्राकर किया है:

"देखने में वे बिल्कुल साधारण आदमी मालूम होते थे। उनके रूप में कोई विशेषता न थी । बोली बहुत सरल और सीधी थी। मैंने मन में सोचा कि क्या यह संभव है कि यह सिद्ध पुरुष हों। मैं धीरे-धीरे उनके पास पहुँचा और उनसे वे प्रश्न पूछे जो मैं अक्सर औरों से पूछा करतो था 'महाराज, क्या आप ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखते हैं?"उन्होंने जवाब दिया, "हाँ"। 'मैंने फिर पूछा, "क्या आप उसका अस्तित्व सिद्ध कर सकते हैं? 'जवाद मिला, "हाँ"। "मैंने पूछा "कैसे? जवाब मिला, "मैं उसे ठीक वैसे ही देखता हूँ जैसे तुम्हें ।"

परमहंस जी की वाणी में बिजली की-सी शक्ति थी जो संशयात्मा को तत्क्षण ठीक रास्ते पर लगा देती थी और यही प्रभाव आगे चल कर स्वामी विवेकानंद जी की वाणी और दृष्टि में भी उत्पन्न हो गया था ।

नरेंद्र की माता उच्चाकांक्षिणी स्त्री थीं। उनकी इच्छा थी कि मेरा लड़का वकील हो, अच्छे घर में उसका ब्याह हो और दुनिया के सुख भोगे। जब रामकृष्ण परमहंस के प्रभाव में आकर नरेंद्र नाथ ने संन्यास लेने का निश्चय किया तो उनकी माता परमहंस जी की सेवा में उपस्थित हुई और अनुनय-विनय को कि मेरे बेटे को जोग न दीजिए। पर जिस हृदयं ने शास्वत प्रेम और आत्मानमति के आनंद का स्वाद पा लिया हो उसे

लौकिक सुख-भोग कब अपनी ओर खींच सकते हैं। नरेंद्र नाथ की वैराग्य-वृत्ति अधिकाधिक बढ़ती ही गई।की

रामकृष्ण परमहंस की महासमाधि के बाद उनके शिष्यों के नेतृत्व का भार नरेंद्र पर ही आया। तभी उन्होंने तथा उनके साथियों ने संन्यास का व्रत लिया। उसके बाद स्वामी जी उच्च आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए हिमालय की और चले गए। कई वर्षों तक वे तपस्या और चित्त-शुद्धि की साथ में लगे रहे। वे सिद्ध महालाओं की खोज करते और उनके राांग का लाभ उठाते। सत्य की खोज करने के लिए उन्होंने सभी तरह के कष्ट प्रसव्रता से सहे । स्वामी जी ने स्वयं कहा है कि मुझे दोनी, तीन-तीन दिन तक खाना न मिलता था, अक्सर ऐसे स्थान पर नंगे बदन सोया है जहाँ की सर्दी का अंदाजा थर्मामीटर से भी नहीं लग सकता। कितनी ही बार शेर-बाय और दूसरे शिकारी जानवरों का सामना हुआ। पर राम के प्यारें की इन वार्टी का क्या डर ।

पहाड़ से उतरकर बंगाल, संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश), राजपूताना (राजस्थान), बंदई आदि का उन्होंने भ्रमण किया। जो जिज्ञासु जन श्रद्धावश उनकी सेवा में उपस्थित होते थे उन्हें वे धर्म और नीति के तत्वों का उपदेश देते थे और जिसे विपदग्रस्त देखते उसको सांत्वना देते थे। मद्रास उस समय नास्तिकों और जड़वादियों का केन्द्र बन रहा था । अंग्रेजी विश्वविद्यालयों से निकले हुए नवयुवक, जो अपने धर्म और समाज-व्यवस्था के ज्ञान से बिल्कुल कोरे थे, खुलेआम ईश्वर का अस्तित्व अस्वीकार किया करते थे । स्वामी जी यहाँ काफी समय तक रहे और कितने ही होनहार नौजवानों को धर्म-परिवर्तन से रोका तथा जड़बाद के जाल से बचाया। कितनी ही बार लोगों ने उनसे वाद विवाद किया, उनकी

खिल्ली उड़ाई, पर वे अपने वेदांत के रंग में इतना डूबे हुए थे कि उन्हें किसी की हँसी-मजाक की तनिक भी परवाह न थी। धीरे-धीरे उनकी ख्याति नवयुवक मंडली से बाहर निकलकर कस्तूरी की गंध की तरह चारों और फैलने लगी। बड़े-बड़े धनी-मानी लोग उनके भक्त और शिष्य बन गए और उनसे नीति तथा वेदांत तत्व के उपदेश लिए । जस्टिस सुब्रह्मण्यम् अय्यर, महाराजा रामनंद (मद्रास) और महाराज खेतड़ी (राजपूताना) उनके प्रमुख शिष्यों में से थे ।

जब स्वामी जी मद्रास में थे तब उनको अमेरिका में सर्व-धर्म सम्मेलन के आयोजन का समाचार मिला । वे तुरंत उसमें सम्मिलित होने को तैयार हो गए। हिन्दू धर्म का उनसे बड़ा ज्ञानी तथा वक्ता और था ही कौन ? भक्त मंडली की सहायता से वे इस पवित्र यात्रा पर रवाना हो गए। उनकी यात्रा अमरीका के इतिहास की अमर घटना है। यह पहला अवसर था कि कोई पश्चिमी जाति दूसरी जातियों के धर्म विश्वासों के स्वागत के लिए तैयार हुई हो ।

अमरीका पहुँचकर उन्हें मालूम हुआ कि अभी सम्मेलन होने में बहुत देर है। उनके ये दिन बड़े कष्ट में बीते। निर्धनता की यह दशा थी कि पास में ओढ़ने-विछाने तक को काफी न था। पर उनकी संतोषवृत्ति इन सब कष्ट-कठिनाइयों पर विजयी हुई। अंत में बड़ी प्रतीक्षा के बाद नियत तिथि आ पहुँची। संसार के विभिन्न धर्मों ने अपने अपने प्रतिनिधि भेजे थे और यूरोप के बड़े-बड़े पादरी और धर्मशास्त्र के आचार्य हजारों की संख्या में उपस्थित थे। पहले तो किसी ने उनकी ओर ध्यान ही न दिया पर सभापति ने बड़ी उदारता के साथ उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, और वह समय आ गया कि स्वामी जी श्रीमुख से कुछ कहें। स्वामी जी ने ऐसी

पांडित्यपूर्ण, ओजस्वी और धारा प्रवाह वक्तुता दी कि श्रोता मंडली मंत्र-युष्य सी हो गई। यह पराधीन भारत का हिन्दू और ऐसा विद्वत्तापूर्ण भाषण, किसी को विश्वास न होता था । आज भी उनके उस भाषण को पढ़ने से भावावेश की अवस्था हो जाती है। वास्तव में उसमें भगवद्गीता और उपनिषदों के ज्ञान का निचोड़ है। उसका सारांश यह है :

"हिन्दू धर्म का आधार किसी विशेष सिद्धांत को मानना या कुछ विशेष विधि-विधानों का पालन करना नहीं। हिन्दू का हृदय शब्दों और सिद्धांतों से तृप्ति-लाभ नहीं कर सकता । अगर कोई ऐसा लोक है जो हमारी स्थूल दृष्टि के लिए अगोचर है, तो हिन्दू उस दुनिया की सैर करना चाहता है। अगर कोई ऐसी सत्ता है जो भौतिक नहीं है, कोई ऐसी सत्ता है जो न्याय-रूप, दया-रूप और सर्वशक्तिमान है, तो हिन्दू उसे अपनी अंतर्दृष्टि से देखना चाहता है। उसके संशय तभी छिन्न होते हैं जब वह उसे स्वयं देख लेता है ।"

कर्म को केवल कर्तव्य समझकर करना, उसमें फल या सुख-दुःख की भावना न रखना ऐसी बात थी जिससे पश्चिम वाले अब तक सर्वथा अपरिचित थे। स्वामी जी के ओजस्वी भाषणों और सच्चाई से भरे उपदेशों से लोग इतने प्रभावित हुए कि अमरीका के अखबार बड़ी श्रद्धा और सम्मान के शब्दों में स्वामी जी को बढ़ाई छापने लगे। उनकी वाणी में वह दिव्य प्रभाव था कि सुनने वाले आत्म-विस्मृत हो जाते थे।

अमरीका में स्वामी जी के भक्तों की संख्या दिनों-दिन बढ़ने लगी। चारों ओर से जिज्ञासु उनके पास पहुँचते और अपने-अपने नगर में पधारने का अनुरोध करते । स्वामी जी को अक्सर दिन-दिन भर व्यस्त रहना

पड़ता । बड़े-बड़े प्रोफेसरों और विद्वानों ने आकर उनके उपदेशों को अपने हृदय में स्थान दिया और उनका शिष्यत्व ग्रहण किया ।

स्वामी जी अमरीका में करीब तीन साल रहे और वेदांत का प्रचार करते रहे। इसके बाद उन्होंने इंगलैंड की यात्रा की। उनकी ख्याति वहाँ पहले ही पहुँच चुकी थी। अंग्रेज उस समय भारत के शासक थे। उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करने में स्वामी जी को प्रारंभ में कुछ कठिनाई हुई पर उनका अद्भुत अध्यवसाय और प्रबल संकल्प अंत में इन सब बाधाओं पर विजयी हुआ। वहाँ ऐसे-ऐसे वैज्ञानिक, जो खाना खाने के लिए भी प्रयोगशाला न छोड़ पाते थे आपका भाषण सुनने कि लिए घंटों पहले सभा में पहुँच जाते और प्रतीक्षा में बैठे रहते। उन्होंने वहाँ तीन महत्त्वपूर्ण भाषण दिए जिनसे उनकी विद्वत्ता का सिक्का उन सबके दिल पर बैठ गया। सब पर प्रकट हो गया कि जड़वाद में यूरोप चाहे भारत से कितना ही आगे क्यों न हो पर अध्यात्म का नेतृत्व भारतीयों के हाथ में ही है। वे करीब एक साल तक वहाँ रहे। अनेकानेक सभा-समितियों, कॉलेजों और क्लबों से उनके पास निमंत्रण आते थे। उनकी ओजमयी वक्तृताओं का यह प्रभाव हुआ कि विशपों और पादरियों ने भी गिरजों में वेदांत पर भाषण दिलवाए । धीरे-धीरे यहाँ भी स्वामी जी की भक्त मंडली काफी बड़ी हो गई। बहुत से लोग, जो अपनी रुचि का आध्यात्मिक भोजन न पाकर धर्म से विरक्त हो रहे थे, वेदांत पर लट्टू हो गए और स्वामी जी में उनकी इतनी श्रद्धा हो गई कि वहाँ से जब वे चले तो कई अंग्रेज शिष्य उनके साथ हो लिए। इनमें कुमारी नोवल भी थीं, जो बाद में भगिनी निवेदिता के नाग से प्रसिद्ध हुई । स्वामी जी ने अंग्रेजों के रहन-सहन और चरित्र-स्वभाव को बड़ी सूक्ष्म दृटि से देखा-समझा । इस अनुभव की चर्चा करते

हुए एक भाषण में उन्होंने कहा है कि यह क्षत्रियों और वीर पुरुषों की जाति है ।

16 सितंबर सन् 1896 ई। को स्वामी जी लगभग चार वर्ष के प्रवास के बाद स्वदेश के लिए रवाना हुए । भारत के छोटे-बढ़े सब मनुष्य उनके यश को सुन-सुनकर उनके दर्शन के लिए उत्कंठित हो रहे थे। उनके स्वागत और अभ्यर्थना के लिए नगर-नगर में कमेटियाँ बनने लगीं। स्वामी जी जब जहाज़ से कोलम्बो में उतरे तो जन-साधारण ने जिस उत्साह और उल्लास से उनका स्वागत किया, वह दर्शनीय था। कोलंबो से अल्मोड़े तक जिस-जिस नगर में वे पधारे, लोगों ने राह में आँखें बिछा दीं। अमीर-गरीब, छोटे-बड़े सबके हृदय में उनके लिए एक-सा आदर-सम्मान था। यूरोप में बड़े विजेताओं की जो अभ्यर्थना हो सकती है, उससे कई गुनी अधिक भारत में स्वामी जी की हुई । उनके दर्शन के लिए लाखों की भीड़ जमा हो जाती थी और लोग उनकी झलक पाने के लिए मंज़िलें तय करके आते थे।

स्वामी जी का रूप बड़ा सुंदर और भव्य था। उनका शरीर सबल और सुदृढ़ था, दृष्टि में बिजली का असर था और मुख-मंडल पर आत्मतेज का आलोक। कठोर बात शायद उनकी जबाव से कभी नहीं निकली। विश्वविख्यात और विश्ववंद्य होते हुए भी उनका स्वभाव अति सरल और व्यवहार अति विनम्र था। उनका पांडित्य अगाध था। वै अंग्रेजी के पूर्ण पंडित और अपने समय के सर्वश्रेष्ठ वक्ता थे । संस्कृत-साहित्य और दर्शन के वे विद्वान थे और जर्मन, हिवू, ग्रीक, फ्रेंच आदि विभिन्न भाषाओं पर उनका अधिकार था। वे केवल चार घंटे सोते थे। प्रातः चार बजे उठकर वे जप-ध्यान में लग जाते । प्राकृतिक दृश्यों के वे बड़े प्रेमी थे। भोर में जप-

तप से निवृत्त होकर मैदान में निकल जाते और प्रकृति-सुषमा का आनंद लेते। उनकी वाणी में ऐसा प्रभाव था कि उनके भाषण श्रोताओं के हृदयों पर पत्थर की लकीर बन जाते थे। कहने का ढंग और भाषा बहुत सरल होती थी पर उन सीधे-सादे शब्दों में ऐसा आध्यात्मिक भाव भरा होता या कि सुनने वाले तल्लीन हो जाते थे।

स्वामी जी अपने देश के आचार-व्यवहार, रीति-नीति, साहित्य और दर्शन, सामाजिक जीवन, उसके पूर्वकाल के महापुरुषों, इन सबको श्रद्धायोग्य और सम्मान्य मानते थे। उनके एक भाषण का निम्नलिखित अंश सोने के अक्षरों में लिखा जाने ग्य है:

"प्यारे देशवासियो, पुनीत आर्यावर्त के बसने वाले, क्या तुम अपनी इस तिरस्करणीय भौषता से वह स्वाधीनता प्राप्त कर सकोगे, जो केवल वीर पुरुषों का अधिकार है? हे भारत निवासी माइयो ! अच्छी तरह याद रखो कि सीता, सावित्री और दमयंती तुम्हारी जाति की देवियाँ हैं। हे वीर पुरुषो ! पर्द बनो और ललकार कर कहो कि मैं भारतीय हूँ, मैं भारत का रहने वाला हूँ। हर-एक भारतवासी चाहे वह कोई भी हो, मेरा भाई है। अपढ़ भारतीय, निर्धन भारतीय, ऊँची जाति का आरतीय, नीची जाति का भारतीय सब मेरे माई हैं। भारत मेरा जीवन, मेरा प्राण है। भारत के देवता मेरा भरण-पोषण करते हैं। भारत मेरे बचपन का हिंडोला, मेरे यौवन का आनंद-लोक और मेरे बुढापे का वैकुंठ है।"

कलकत्ते में अध्यापन और उपदेश में अत्यधिक श्रम करने के कारण स्वामीजी का स्वास्थ्य बिगड़ गया और जलवायु परिवर्तन के लिए उन्हें दार्जिलिंग जाना पड़ा। वहाँ से वे अल्मोड़ा गए । पर स्वामी जी ने तो वेदांत के प्रचार का व्रत ले रखा था, उनको खाली बैठे कब चैन आ सकता

था। ज्यों ही तबीयत जरा सँभली, वे स्यालकोट पधारे और वहाँ से लाहौर वालों की भक्ति ने उन्हें अपने यहाँ खींच बुलाया। इन दोनों स्थानों पर उनका बड़े उत्साह से स्वागत-सत्कार हुआ। उन्होंने अपनी लाहौर से वे कश्मीर गए और वहाँ से वे राजपू ताने का भ्रमण करते हुए कलकत्ता लौट आए। इसी बीच उन्होंने दो मठ स्थापित किए । इसके कुछ दिन बाद उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की । इस संस्था का उद्देश्य लोक-सेवा करते हुए वेदांत का प्रसार करना है। इसकी शाखाएँ भारत के हर भाग में तथा विदेशों में विद्यमान हैं और वे जनता का बहुत उपकार कर रही हैं।

1897 ई. में भारत में महामारी का प्रकोप हुआ। स्वामी जी ने देशसेवाव्रती संन्यासियों की एक छोटी-सी मंडली बना दी थी। वे 'सब स्वामी जी के निरीक्षण में तन-मन से दीन-दुखियों की सेवा में लग गए। मुर्शिदाबाद, ढाका, कलकत्ता, मद्रास आदि में सेवाश्रम खोले गए वेदांत के प्रचार के लिए जगह-जगह विद्यालय भी स्थापित किए गए । कई अनाथालय भी खुले। स्वामी जी का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ रहा था, फिर भी वे स्वयं घर-घर में घूम-घूमकर पीड़ितों को आश्वासन तथा आवश्यक सहायता देते रहते थे। ऐसे प्लेग-पीड़ितों की सहायता करना, जिनसे डाक्टर लोग भी भागते थे, इन्हीं देशभक्तों का काम था।

अधिक श्रम के कारण स्वामी जी का स्वास्थ्य बहुत गिर गया। इन दिनों आप अक्सर समाधि की अवस्था में रहा करते थे और अपने भक्तों से कहा करते थे कि अब मेरे महाप्रस्थान का समय बहुत समीप है । 4 जुलाई 1902 ई. को एकाएक आप समाधिस्थ हो गए । सवेरे दो घंटे समाधि में रहे। दोपहर को शिष्यों को पाणिनीय व्याकरण पढ़ाया और

तीसरे पहर दो घंटे तक वेदोपदेश करते रहे। इसके बाद वे टहलने को निकले । शाम को लौटे थोड़ी देर माला जपने के बाद फिर समाधिस्थ हो गए और उस समाधि की अवस्था में ही पंचभौतिक शरीर का त्याग कर परमधाम को सिधार गए।

स्वामी जी आज हमारे बीच में नहीं हैं, पर आध्यात्मिक ज्योति की जो मशाल वे जला गए हैं वह सदा के लिए संसार को आलोकित करती रहेगी।

*****

4. देवताओं के अंचल में

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

लेखक परिचय: श्री'अज्ञेय' का जन्म एक सारस्वत ब्रम्हाण परिवार में 7 मार्च सन 1911ई.को हुआ था और 1987 ई. में उनका देहांत हुआ ।'अज्ञेय'को बाल्यावस्था में ही पिता के साथ इस देश के प्रायः सभी प्रमुख नगरों की यात्रा का लाभ प्राप्त हुआ था । फलतः जन्म जात प्रतिभा के धनी 'अज्ञेय को एक प्रतिभाशाली छात्र के रूप में उभरने में बड़ी सहायता मिली थी । उन्होंने लाहौर से मैट्रिक मद्रास से विज्ञान इन्टरमिडिएट और पुनः लाहौर से ही बी.एस-सी. की उपाधि प्राप्त की | सन 1929 में उन्होंने एम्.ए.में पढना आरंभ किया, परन्तु पंजाब के क्रन्तिकारी आन्दोलन के प्रभाव में आकर उस समय उन्होंने उसे पूरा नहीं किया | रचनाएँ- कविता संग्रह:- भग्नदूत-1933, चिन्ता-1942, इत्यलम्-1946, हरी घास पर क्षण भर-1949, बावरा अहेरी-1954, इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये-1957, अरी ओ करुणा प्रभामय-1959, आँगन के पार द्वार-1961, कितनी नावों में कितनी बार (1967) क्योंकि मैं उसे जानता हूँ (1970) सागर मुद्रा (1970) पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ (1974) महावृक्ष के नीचे (1977 ...)

सिविल सेक्रेटेरियट के बड़े फाटक से बाहर निकलते ही मैंने लम्बी साँस ली। पुलिस का विभाग समाज की रक्षा के लिए और शांति की स्थापना के लिए बना है, लेकिन मेरा जब-जब उससे वास्ता पड़ा है, तब-तब मैं जैसे अपमान की आग में जल उठा हूँ। पुलिस की कृपा से मैंने चार वर्ष जेल में बिताये और उसके बाद भी डेढ़ साल से नज़रबंद हूँ, इस का मुझे क्षोभ नहीं है। लेकिन उस नज़रबंदी में जो थोड़ी-सी गुंजाइश रखी

गयी है कि मैं अनुमति लेकर बाहर जा सकूँ इस का मुझे जब-जब मजबूरन फ़ायदा उठाना पड़ा है, तब-तब मुझे लगा है कि मैं पुलिस के सामने छोटा हो रहा हूँ ... मुझे याद आता है. जब रवीन्द्रनाथ ठाकुर लाहौर में आकर नवाकोट में ठहरे, तब मैं उनके दर्शन करने इसीलिए नहीं गया कि जाने के लिए पुलिस से पूछना पड़ेगा। अनुमति फ़ौरन मिल जायेगी, लेकिन पूछना तो पड़ेगा, पुलिस से पूछना पड़ेगा.... आज भी गिरते हुए स्वास्थ्य को सँभालने के लिए जब पहाड़ जाना आवश्यक हो गया है, तब मैंने आकर सुपरिंटेंडेंट पुलिस (सी.आई.डी.) से अनुमति ले ली है उनसे यह आश्वासन भी पाया है कि वह मेरे किसी उचित काम में विघ्न नहीं डालेंगे और शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ करने में मेरी भरसक सहायता ही करेंगे, लेकिन मैं उन्हें क्षमा नहीं कर सकता हूँ। मेरी जेब में जो चिट्ठी पड़ी है, उस में लिखा है, "....को अनुमति दी जाती है कि दो महीने के लिए मुझे पहाड़ पर या समुद्र पर या जहन्नुम में जाने की अनुमति देने या न देने वाला कोई क्यों है ?

कवि गा गये हैं:

आइ एम द मास्टर आफ़ माइ फ़ेट

आइ एम द कैप्टेन आफ़ माइ सोल

और हर-एक युग में हर-एक आदमी की आत्मा ने अपने-अपने ढंग से इस की दाद दी है लेकिन फिर भी वह अपनी तकदीर दूसरे के हाथ सौंपता आया है, अपनी आत्मा पर दूसरे का आधिपत्य स्थापित कराने में खुद साधन बनता आया है ।

लेकिन मेरे पास चारा नहीं है। अपने अभिमान को पी ही जाना है ... मैं उसे कायम रखकर स्वास्थ्य को नष्ट होने दे सकता है मुझे परवाह नहीं है; पर अभी इतना कुछ करना है इतने बिखो हुए सूत्रों को समेटना है। मेरी उस लम्बी साँस की यही कहानी है।

रात ग्यारह बजे लाहौर से रेल में बैठा, तड़के चार बजे पठानकोट में गाड़ी बदल कर पालमपुर, कॉगड़ा, वैजनाथ इत्यादि थे लाँघता हुआ तीसरे पहर जोगेन्द्रनगर पहुँच गया।' यहाँ पर मंडी हाइड्रो इलेक्ट्रिक स्कीम का केन्द्र है उहल नदी का पानी बाँध कर दो मील लम्बी सुरंग द्वारा बिजलीघर तक लाया जाता है, और वहाँ उस से इतनी बिजली पैदा की जाती है, जो पंजाब के कई जिलों के लिए पर्याप्त है। कारखाना और नदी के हेड-वर्क्स दर्शनीय हैं, और यहाँ तक पहुँचने के लिए जिस रस्से से खिंचनेवाली ट्राली पर बैठ कर जाते हैं, उसकी सवारी भी एक चीज़ है, लेकिन यह सब मैं कई वर्ष पहले अपने छात्र-जीवन में देख चुका था, इसलिए फ़ौरन ही मंडी जाने वाली मोटर में बैठ कर मैं 'देवताओं के अंचल' कुलू की ओर बढ़ चला । पालमपुर से आगे खेतों की हरियाली और आकाश की नीलिमा देखकर लाहौर का अवसाद धीरे-धीरे मिटने लगा था, जोगेन्द्रनगर से कुछ पहले चीड़ के वृक्ष देखकर तबीयत एकाएक फड़क उठी थी ... पृथ्वी माता के आकाश की ओर उठे हुए इन अभयद हाथों के तले रहने का सौभाग्य जिसने पाया है, वही जानता है कि चीड़ वृक्षों को देखकर ही

1. अब यहाँ रेल सिर्फ वैजनाथ तक जाती है, वैजनाथ से जोगेन्द्रनगर का अंश आर्थिक दृष्टि से अनुपयोगी पाया गया था ।

हृदय में कैसे अनिर्वचनीय रस का संचार हो आता है। लारी में बैठा, तब चित्त प्रसन्न था यहाँ तक कि लारी जब सड़क के उतार-चढ़ाव के कारण डोलने लगी और कभी-कभी सड़क पर से बहकर जाने वाले पहाड़ी झरनों के पानी में छप्-छप् कर के स्वयं उछलने और कीचड़ उछालने लगी, तब मैं उस यात्रा का वर्णन करने के लिए तुकबन्दी की कड़ी पर कड़ी जोड़ने लगा। लारी के प्रत्येक दचके के साथ एक कड़ी और जुड़ जाती, तब मैं पूरी तुकबन्दी दुहरा लेता कि याद हो जाये और पड़ाव पर पहुँच कर लिख सकूँ।

लारी का इंजन गर्म हो गया, अगली सीट पर बैठे मेरे पैर जलने लगे। मैंने लौट कर पीछे देखा, लेकिन पीछे और बुरी हालत थी। कई एक सवारियाँ वमन कर रही थीं तीन-चार कै होने के बाद अब उन्हें इतनी सुध नहीं रही थी कि मुँह बाहर ही निकाल लिया करें। मैं फिर आगे देखने लगा, 'कविता' आगे नहीं चली लेकिन जिस उद्देश्य से उतनी बनी थी, उस के लिए उतनी ही काफ़ी थी। मैं अपनी छोटी बहन को साथ नहीं ला सका था, तब उसने वचन लिया था कि रोज़ की सैर का वर्णन उसे लिखता रहूँगा ।

चार घंटे की यात्रा के बाद हम लोग दिन छिपते मंडी पहुँच गये । डाक बंगला दूर था, ड्राइवर ने बताया कि डाकघर के पास ही एक होटल है और मेरा सामान कुली को उठवा दिया कि वहाँ ले जाये । लकड़ी के दुमंज़िले मकान की दूसरी मंज़िल में छज्जे का एक कोना लकड़ी के परदे द्वारा अलग कर दिया गया था। नसैनी से चढ़ कर वहाँ जाते थे । एक तरफ़ एक चारपाई किसी तरह अँटा दी गयी थी, बाक़ी जगह एक दरी का टुकड़ा बिछा था, जो मैल और चिकनाई की जमी हुई पपड़ी के कारण 'लिनोलियम' बन गया था। किवाड़ कोई नहीं था।

मैं कमरे के एक तरफ़ खड़ा हो गया। नीचे बाज़ार का चौक था। सामने मंडी के महाराजों का पुराना महल, जहाँ अब कचहरी है। होटल का नीकर बिस्तर खोलने लगा। मैंने कहा, "क्या जरूरत है, यही दरी खुली है यही बिछा दो। ठंड तो है नहीं, चादर ओद कर सो रहूँगा।"

"बाबूजी, मोटा-सा बिस्तर विछाइये। चारपाई में इतने खटमल हैं कि आप याद करेंगे।"

मैंने मुस्कराकर कहा, "अच्छा भई।"

बिस्तर पर लेटकर (बैठने से ऐसा मालूम होता था कि बीच बाज़ार में बैठा हूँ आड़ तो कोई थी नहीं) मैं बहन को पत्र लिखने लगा । कुछ खटका-सा हुआ, तो मैंने आँख उठाकर देखा। कमरे के प्रवेश मार्ग के सामने दो छोटी-छोटी लड़कियों खड़ी थीं। दोनों थी बाँहों पर फूलों से भरी हुई छोटी-छोटी डालियाँ थीं।

मैंने कुछ विस्मित होकर पूछा, "क्या है?"बिना बोले वे मेरी ओर बढ़ आयीं। मोतिये का एक-एक महकता हुआ गजरा दोनों ने मेरे गले में डाल दिया, फिर अपने पहले स्थान पर जाकर खड़ी हो गयीं ।

मुझे अच्छा-सा लगा। पिछलें पाँच सालों में जितने अलंकार मैंने जाने थे, सब लोहे के ही बने थे। मेरा जी नहीं हुआ कि पैसे देकर उस मधुर घटना को नष्ट करूँ।

लेकिन ऐसी घटनाएँ बनी रहें, तो सही नहीं जातीं। किसी तरह तोड़ना ही होता है उन्हें।

मैंने पूछा, "तुम लोग कौन हो ?"

उन्होंने एक साथ ही उत्तर दिया, "बाबूजी, हमने फूल दिये हैं।"

मुझे लगा कि यह उत्तर असंगत है, लेकिन तत्काल ही मैं समझ गया कि फूलों का मोल चुकाना होगा। मैंने हाथ बढ़ा कर सिरहाने पड़े हुए बटुए में से दो इकन्नियों निकालीं। एक लड़की को इकत्री दी, तो वह कुछ घबड़ा कर कहने को हुई, 'भॉज नहीं है'. लेकिन जब उसने देखा कि दूसरी लड़की अलग इक्त्री पा रही है, तब एकदम खिल उठी, और दोनों भाग गयी।

मैंने फिर चिट्ठी उठायी, लेकिन लिखने को मन नहीं हुआ। मैं लेटा हुआ पिछले पाँच नष्ट हुए वर्षों की बात सोचने लगा नष्ट ही तो हुए थे। मेरे मस्तिष्क ने निःसन्देह उन से बहुत लाभ उठाया, लेकिन अनुभूति मुझे लगता है कि अनुभूति का मैं दिवालिया हो गया हूँ..... सबेरे उठते ही सुना, रियासत का बैंड सूर्योदय का स्वागत कर रहा है। मंडी के राजा सूर्यवंशी हैं, अतः जब वह मंडी में होते हैं तय 2 सायं-प्रातः सूर्य की विदाई और स्वागत के लिए बैंड बजता है। जल्दी-जल्दी बिस्तर बाँध कर कुली के सिपुर्द किया, होटल के पैसे चुकाये भोजन के पाँच आने, कमरे के आठ-शहर का एक चक्कर लगाकर उठती हुई निगाह से व्यास नदी के तट पर बने हुए बीसियों सुन्दर देवस्थान देखे और ऊपर पहाड़ पर बना हुआ किला, जिस में मंडी के राजा अपनी "अविश्वसनीया"रानियों को कैद कर दिया करते थे, और फिर मोटर में आ बैठा ।

'यहाँ से देवताओं का अंचल आरंभ होता है, इसका बड़ा बढ़िया प्रमाण यह मिला कि मानवों की सृष्टि मोटर को देवताओं की सृष्टि मानव के पीछे-पीछे चलना पड़ा। मंडी से कुलू प्रदेश में जाते हुए व्यास नदी का एक

रस्सी का झूलना पुल पार करना पड़ता है, जिस पर से लारी का जाना खतरनाक है। लारी चार मील की रफ़्तार से तेज़ न चले, इसका प्रबंध यह किया गया है कि पुल का चौकीदार अपनी पीठ पर एक तख्ती टाँगे (जिस पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है - 'चार मील रफ़्तार । इस आदमी के पीछे-पीछे इसी की चाल से चलो !') आगे-आगे चलता है और मोटर उसके पीछे चलती है। पुल के दोनों ओर पहरा पड़ा रहता है कि चौकीदार की अनुमति के बिना कोई आर-पार न जा सके ।

2. कहना न होगा कि यह रियासती युग की बात है।

दस बजे के करीब हम लोग औट पहुँचे। यहाँ से एक शिमला जाती है। पहले यह मार्ग पैदल चलने वाले साहसिक लोन लिए बड़ा भारी आकर्षण था, लेकिन अब पक्की सड़क बन जा शिमला के फैशनेबल सैलानी 'वीक एंड' बिताने के लिए मोटा बैठकर सीधे मनाली आ सकते हैं। आस-पास का सौन्दर्य अब भी है, लेकिन चमत्कार नष्ट हो गया है। और कुछ आगे से एक मणिकर्ण भी जाता है। मणिकर्ण तीर्थ स्थान है। यहाँ गर्न पान कई सोते हैं, जिनकी उष्णता अलग-अलग है। कोई नहाने के ठीक है, तो किसी में चावल उबाले जा सकते हैं। व्यास नदी किनारे-किनारे सुन्दर किंतु कहीं-कहीं खतरनाक सड़क पर बढ़ते हम लोग बारह बजे कुलू पहुँच गये ।

कुलू प्राचीन हिन्दू सभ्यता का गहवारा है। यहाँ प्रत्येक और ग्राम के अपने-अपने देवता हैं, जो अपने-अपने मन्दिरों में बैठे ही लोगों की पूजा पाते हैं और साल में एक बार अपने-अपने रथ बैठकर कुलू के रघुनाथ मन्दिर में प्रतिष्ठित राम की उपासना के जाते हैं। सैकड़ों देवी-देवताओं और उनके मन्दिरों के कारण, और विराट देव-सम्मेलन के कारण ही, कुलू

प्रदेश का नाम 'देवताओं अंचल (वैली आफ़ द गाड्स) पड़ा है। ये सब असंख्य देवी-देवता ऋषि-मुनि यहाँ के आदिम निवासियों द्वारा पूजे जाते थे। वे आव या नहीं, इस बात का झगड़ा यहीं नहीं है, लेकिन आर्य-धर्म के रूप को हिन्दू-धर्म के नाम से हमने जाना, वह यहाँ विजेता के रू आया। जब बाहर से आये हुए विजेता यहाँ शासक बन कर बस तब जिस तरह वे यहाँ के मांडलिक राजाओं या सरदारों से अ आधिपत्य मनवाने लगे, उसी तरह यहाँ के देवी-देवताओं से भी अ अधिदेवता राम की अधीनता स्वीकार कराने लगे। यहाँ पर दशहरे दिन विजयी राम का जो उत्सव होता है, जिस में आस-पास के देवी-देवता रथों में बैठा कर लाये जाते हैं, उसमें मुझे इसी विजय का सांकेतिक रूप दीखता है। जिस तरह मुहावरे में कहते हैं 'देवता कूच कर गये', उसी तरह देवताओं का अधीनत्व शायद उन देवताओं को पूजनेवाली गति के अधीनत्व का संकेत माना गया । रामायण में लंका-विजय के बाद देवताओं का अपने-अपने विमानों में बैठ कर 'सलामी देने आना भी यही भाव व्यक्त करता है। खैर, कुछ भी हो, इस विराट उत्सव में, ऐसा सुनने में आता है, हज़ार हज़ार तक देवता शामिल होते हैं।

उस प्रथम विजयी जाति के आक्रमण के बाद शायद और आक्रमण इधर नहीं हुए, क्योंकि यहाँ पर हिन्दू धर्म का जो रूप मिलता है, वह अन्यत्र नहीं। विजेताओं की राम-पूजा और विजितों की देव-पूजा में एक समन्वय हो गया, वही अब तक कायम है। कुलू प्रान्त में व्यास कुंड, व्यास मुनि, वसिष्ठ आदि ऋषि-मुनियों के स्थान हैं, पांडवों के मंदिर हैं, भीम-पत्नी हिडिम्बा 'देवी' भी पूजा पाती हैं, और सब से बढ़कर महत्वपूर्ण बात यह कि वहाँ पर 'मनु-रिखि' या मनु भगवान का भी एक मन्दिर है।

शायद भारत में यह एकमात्र स्थान है, जहाँ मानवता का यह स्वयंभू आदिम प्रवर्तक मंदिर में प्रतिष्ठित हो और पूजा पाता हो।

दशहरे के अवसर पर यहाँ बड़ा भारी मेला भी लगता है। साल भर का व्यापार प्रायः इस एक दिन में ही हो जाता है बाहर से आये हुए यात्रियों के लिए बनी हुई देशी-अंग्रेजी दूकानों और कुछ होटलों या पंसारी-हाट की बात अलग है इस लिए यहाँ पर ग्राहक और विक्रेता दोनों ही बड़ी उमंगें लेकर आते हैं। रंगे-बिरंगे कम्बल, पट्टू-पट्टियाँ, पश्मीना, 'चरू' और अन्य प्रकार की खालें - रीछ की,

3. गर्भवती भेड़ का पेट चीर कर निकाले गये बच्चे की खाल । बहुत मुलायम और गर्म होने के कारण शौकीन लोगों में इसकी बहुत माँग रहती है।

मृग की, तेंदुए की, कभी-कभी बर्फ के बाघ (स्नो-लेपर्ड) की तरह-त के जूते, मोजे सिली-सिलाई पोशाके, टोपियों, बाँसुरी, बर्फ पीतल और चाँदी के आभूषण, लकड़ी, हड्डी और सींग की कंधित देशी और विदेशी काँच, बिल्लौर और पत्थर के मनकों के हार- न शा क्या-क्या चीजें वहाँ आती हैं और देखते-देखते बिक जाती है दिन-भर में हजारों की सम्पत्ति हाथ बदल लेती है..... तमाशे होते। नाच होते हैं, गाना-बजाना होता है, जगमग रोशनी होती है। और जाने कितनी 'लुगड़ी' (देशी शराब) पी डाली जाती है।

उस दिन कुलू में दो घंटे ठहरे। भोजन किया और फिर लाई में बैठ कर आगे बढ़े। मनाली देवताओं के अंचल का ऊपरी छोस्कु से 23 मील है। अध-बीच में कट्राई की बस्ती है जहाँ एक मिट्ट स्कूल है, जिसके हेडमास्टर साहब एक पंजाबी आर्य समाजी थे मोटर स्कूल के सामने ही

खड़ी हुई थी, उतरने पर अकस्मात् उनम सामना हो गया और बात-बात में परिचय भी हुआ। उन्होंने स्कूल दिखा दिया। जिस तरह विपरीत परिस्थितियों और कठिनाइयों क सामना करते हुए उन्होंने स्कूल स्थापित किया और चलाया था, उसर्क बात सुन कर मन में श्रद्धा हुई, लेकिन जो पढ़ाई हो रही थी उसर्क ज़रूरत का कायल मैं नहीं हो सका। बानगी देखिए

मास्टर साहब	:	"लडको, पाँच उँगलियों को पंजा कहते है
लड़के	:	(एक साथ चिल्ला कर) 'पंजा ।"
मास्टर	:	"क्या कहते हैं ?'
लड़के	:	(उसी प्रकार) "पंजा !
मास्टर	:	(वही प्रश्न) ।
लड़के	:	(वही उत्तर) ।

ऐसे बीस बार । फिर एक लड़के से अलग प्रश्नोत्तर

मास्टर	:	"तुम्हारे हाथ में कितनी उँगलियाँ हैं ?
लडका	:	पाँच !"
मास्टर	:	"क्या कहते हैं ?'
लड़का	:	"पंजा ?"
फिर सारी क्लास से	-	
मास्टर	:	"कया कहते हैं ?
सब लड़के	:	"पंजा ।"

फिर दूसरे लड़के से यही क्रम। इस प्रकार पूरी कक्षा से । बस, पीरियड समाप्त, छुट्टी।

व्यास नदी के बहाव के कारण जो भूमि कट कर समतल हो गयी है, उसमें कट्राई सबसे सुन्दर स्थान है । यहाँ घाटी खूब चौड़ी हो गयी है और किसी तरफ़ भी कुछ ऊपर चढ़ कर देखने से फैले हुए धान के खेतों और बीच-बीच में सेब, नाशपाती, खुबानी, आड़ू, आलूचे और गिलास के पेड़ों का बहुत ही मनोरम दृश्य दीख पड़ता है। ट्राउट मछली के शिकार के लिए भी यह स्थान बहुत अच्छा है, इस लिए यहाँ से कुछ मील ऊपर तक व्यास के किनारे-किनारे तम्बू डाले कई एक अंग्रेज़ लोग नदी-कूल पर बैठकर ऊँघा करते हैं और सब्र का सबक पढ़ा करते हैं, या कभी सोचा करते हैं कि वापस लौट कर जब वे लोगों को शिकार की बात सुनायेंगे, तब कितनी बड़ी मछली पकड़ लेने में अपनी सफलता पर उनको विश्वास दिला सकेंगे। जानी हुई बात है कि ट्राउट के शिकारियों में सौ में से निन्नानबे नौ इंच से बड़ी मछली नहीं पकड़ते-और सौवाँ झूठ कहता है !

कट्राई से दो मील चढ़ाई चढ़कर नगर जा सकते हैं। नगर में कुलू राज्य की पुरानी राजधानी है। पुराने राजाओं के महल इत्यादि अनेक दर्शनीय इमारतें और कुछ प्राचीन मन्दिर भी हैं। महादेव का एक प्राचीन मन्दिर अपने सौन्दर्य के लिए खास तौर से दर्शनीय है। रूसी कलाकार रोयरिच द्वारा स्थापित हिमालयन रिसर्च इंस्टिट्यूट भी यहीं है। यह संस्था रोयरिच के भाई डॉक्टर जार्ज रोयरिच की देख-रेख में हिमालय की भाषाओं, जातियों, लोक-साहित्य और वनरपतियों के संबंध में अनुसंधान करती है। स्वयं शेयरिय' श्री अक्सर यहीं रहते हैं, यद्यपि जब-तब वह दूर देशों की सैर को भी यह देते हैं।

कट्राई से मनाली तक का पुराना रास्ता नगर और जगतसुख हो कर जाता था कढ़ाई में व्यास नदी पार की जाती थी और मनाली के नीचे फिर

वापस पार हो जाते थे। लेकिन अब मोटर की सड़क दूसरे किनारे के साथ-साथ ही सीधी मनाली जाती है और नगर उससे अलग पड़ गया है। सुभीते के लिहाज़ से चाहे जैसा हो, सौन्दर्य-रखा के लिए यह बहुत अच्छा हुआ है। मनाली से नगर वाली कच्ची सड़क उस तरफ़ की सबसे लम्बी सैर है। ऊँच-नीच भी बहुत अधिक नहीं है. और दृश्य तो हर-एक मोड़ पर ऐसा सुंदर दीखता है कि कहा नहीं जा सकता । एक ओर उठते हुए चीड़ के जंगल की गलियों, दूसरी ओर खुली हुई तराई में लहराते हुए धन-खेतों के मखमली आँगन-न जाने किस रहस्यमय की नीरव पद-चाप हर समय उसमें एक हिलोर-सी उठाती रहती है। इसी सड़क पर जगतसुख गाँव में भी कई एक दर्शनीय प्राचीन मंदिर हैं, जिनमें हिन्दू युग के कलाकारों की कारीगरी अभी तक ज्यों की त्यों बनी है।

कट्राई से चल कर मोटर कलाथ होती हुई मनाली जा पहुँची । कलाथ में गर्म पानी का एक कुंड है, जिसमें गंधक और अन्य रसायन काफ़ी मात्रा में होते हैं। यूरोप में कहीं ऐसा कुंड होता, तो वहाँ स्नान के लिए स्थान और सफ़ाई का प्रबंध होता, लेकिन यहाँ पर आम तौर पर पहाड़ी औरतें अपने कपड़े धोती दीखती हैं। ऊनी कपड़ों के लिए ऐसी बढ़िया 'लांड्री' और कहाँ मिलती ?

मनाली या मुनाली ने यह नाम मुनाल नामक पक्षी से पाया, जो यहाँ बहुतायत से होता है। हिमालय का फेजेंट जाति का यह

4. निकोलस रोयरिच दिवंगत हो गये हैं।

पक्षी अत्यंत सुन्दर होता है। इस के संबंध में यहाँ के लोगों में बई किंवदन्तियाँ भी सुनने में आती हैं।

लेकिन समतल भूमि पर रहने वाले लोग मनाली को यहाँ के सेबों के कारण ही जानते हैं। सेब और नाशपाती के लिए मनाली शायद संसार में सबसे बढ़िया स्थान है। यहाँ के फलों के संबंध में कोई वैज्ञानिक अनुसंधान नहीं होता, न उस ढंग का संगठित काम होता है, जैसा कि अमेरिका के कैलिफ़ोर्निया आदि फलप्रद इलाकों में, फिर भी यहाँ के सेब, यहाँ के बग्गूगोशे (एक विशेष प्रकार की रसीली नाशपाती) और यहाँ के गिलास ('चेरी) अपना सानी नहीं रखते । सिर्फ़ मीठे को ही स्वाद गिनने वाले लोग कश्मीर के अमरी सेबों को पसंद करते हैं, लेकिन कुलू के खट-मिट्ठे खस्ता सेब, जो मनाली में होते हैं, अपने विशेष स्वाद और खुशबू से जो अपूर्व रस पैदा करते हैं. उसकी तुलना किसी चीज़ से की जा सकती है, तो अनिर्वचनीय काव्यरस से ही। अभी हाल में कुछ ध्यान अन्देषण और प्रयोग की ओर भी जाने लगा है, और इस का एक परिणाम यह हुआ है कि जापानी परसिमन यहाँ पर पैदा होने लगा है। कहते हैं कि शीघ्र ही मनाली का 'जापानी फल' जापान को मात कर देगा।

मनाली की दो बस्तियाँ हैं। एक तो बाहर से आकर बसे हुए लोगों द्वारा बनाये हुए बँगलों और बाज़ार वाली बस्ती जो दाना कहलाती है, और दूसरी उससे करीब मील-भर ऊपर चलकर खास मनाली गाँव की। मोटर दाना तक जाती है। दाना से सड़क फिर व्यास नदी पार कर के रोहतंग की जोत से होकर लाहौल को चली जाती है। इसी मार्ग पर मनाली से दो मील की दूरी पर वसिष्ठ नाम का गाँव है, जहाँ गर्म पानी के कुंड हैं और वसिष्ठ मंदिर भी है। कहते हैं कि वसिष्ठ ऋषि यहीं तपस्या करते-करते पाषाण हो गये थे, पाषाण मूर्ति वहाँ पूजी भी जाती है। यहाँ के पानी में गन्धक की मात्रा काफ़ी है, और वह स्वास्थ्य के लिए बहुत अच्छा है।

रो इतंग की जोत पर ही व्यास-कुंड है। यहाँ से कुछ मील हटकर व्यास मुनि का स्थान है, जहाँ से व्यास नदी का उद्‌गम है। रोहतंग का मार्ग बहुत रमणीक है। व्यास नदी के वेग से किस तरह पहाड़-के-पहाड़ कट गये हैं, वह भी देखने की चीज़ है। कहीं-कहीं तो नदी एक आठ-दस फुट चौड़ी दरार में चार-पाँच सौ फुट नीचे जाकर अदृश्य हो गयी है, केवल स्वर सुन पड़ता है। इस का कारण यह है कि व्यास नदी बहुत तीव्र गति से नीचे उतरती है अपने मार्ग के पहले पाँच मील में वह जितना नीचे उतर आती है, उतना अगले पचास मील में नहीं, और उसके बाद के पाँच सौ मील में नहीं। समुद्रतल से व्यास मुनि की ऊँचाई पन्द्रह हज़ार फुट है, दाना की साढ़े छः हज़ार-यानी आठ मील में व्यास नदी आठ हज़ार फुट उतर आती है। (सड़क से 'रोहतंग पास' दाना से तेरह मील है, नदी का मार्ग छोटा है।) रोहतंग की जोत के दूसरी पार कोकसर पड़ाव है। यहाँ जाते हुए बर्फ के सौन्दर्य का जो दृश्य दीखता है, वैसा मैंने दूसरा नहीं देखा। उसका न वर्णन हो सकता है, न चित्र खिंच सकता है। कुछ मीलों के दायरे का एक प्याला-सा बना हुआ है, जिसके सब ओर ऊँची-ऊँची हिमावृत चोटियाँ, उससे कुछ नीचे पहाड़ों के नंगे काले अंग, औ प्याले के बीच में फिर बर्फ़ से छाया हुआ मैदान-मानो अभिमानी पर्वत सरदारों ने अपना शीश और कटि-प्रदेश तो ढक लिया है, लेकिन छाती दर्प से खोल रखी है... इस स्थान से तीन नदियों का उद्‌गम है, ऊपर से व्यास, मध्य से चन्द्रा और भागा, जो आगे चलकर मिल जाती हैं। लेकिन रोहतंग की यात्रा का और कुलू प्रदेश के अपने दूसरे विचित्र अनुभवों का वर्णन अलग लेख माँगता है।

दाना के दूसरी ओर पहाड़ के ढलान पर चीड़ के जंगल में हिडिम्बा देवी का मन्दिर है। एक चीड़ वृक्ष के तने के आस-पास बना हुआ यह

लकड़ी का पंच-मंज़िला मन्दिर दर्शनीय है। इसके द्वारों पर नक्काशी का जो काम है, वह कई सौ बरस पुराना है। एक पट्टे पर लेख भी खुदा हुआ है। मन्दिर से मनाली की और जाते हुए मार्ग दो बटुदानों के बीच होकर गुजरता है, जो अपने आज्जर के कारण 'देवी का चूल्हा के नाम से प्रसिद्ध है। कहते हैं कि यहां हिडिम्बा देवी मनुष्य भून-भून कर अपना भोजन तैयार करती थीं। मनाली की बस्ती के ऊपरी छोर पर मनुरिखि का मन्दिर है। यह छोटा है, विशेष सुन्दर भी नहीं है, लेकिन मनु का एकमात्र मन्दिर होने के कारण विशेष महत्व रखता है।

हमारी मोटर दाना पहुंची, तो मेरे परिचित बैनन बन्धु मुझे लेने आये थे। उन भाइयों के पिता कर्नल बैनन उस प्रदेश में आकर बसने वाले सबसे पहले विदेशी सज्जन थे। उन्होंने यहाँ शादी की थी, और रहने लगे थे। मनाली में सेबों का पहला बाग भी उन्होंने लगाया था। अब उनके पुत्र भी पिता का आदर्श निबाह रह है। दो भाई फौज में भी जा चुके हैं, और मेजर तथा कैप्टेन के पद पर हैं।

मैं अकेला था, इसलिए बैनन बन्धुओं ने मेरे लिए मनाली गाँव के सिरे पर ही एक छोटा मकान ठीक कर दिया था। यह छोटा-सा मकान मचान की तरह बना हुआ था, नीचे का अश रहने के काबिल नहीं था, और बेकार पड़ा रहता था, ऊपर का हिस्सा एक चौकोर कमरा था, जिसके चारों तरफ चौड़ा छज्जा बना हुआ था। कोने में पड़ी नसैनी से एक छिद्र द्वारा बालू छत की आड़ में बनी हुई मियानी में जा सकते थे, जहाँ रसोई थी। एक पहाड़ी पत्थर कूटने वाला मुझे स्सोइये के रूप में मिला-खानसामा रखने पर लकड़ी लाने, पानी भरने इत्यादि के लिए अलग-अलग आदमी रखने पड़ते थे और बहुत शीघ्र में वहाँ जम गया । मैं वहाँ आया तो था

स्वास्थ्य-लाभ करने, लेकिन सबसे बड़ी आकांक्षा यह थी कि एकांत में रहकर एक बड़ा-सा उपन्यास लिख डालूँगा । जेल में रहते हुए उसका ढाँचा तैयार हुआ था, और वह मैंने अंग्रेजी में पूरा लिख भी डाला था, लेकिन जेल के चार वर्षों ने मुझे यह भी दिखा दिया था कि उसमें अभी लड़कपन बहुत है। एक बड़े केनवस पर मैंने एक विद्रोही के पूरे जीवन का चित्र खींचने की कोशिश की थी, और जहाँ तक चित्र का संबंध था, वह काफ़ी सच्चा उतरा था, पर जिस भूमि पर वह खींचा गया था भारतीय समाज और संस्कृति-उसका ज्ञान मेरा अधूरा ही था, और इसलिए चित्र ठीक नहीं था। अब नये अनुभव के आधार पर परिवर्तन और परिष्कार करके मैं उसे फिर हिन्दी में लिखना चाहता था। उपन्यास को मैं जीवन-दर्शन मानता हूँ, और इस दृष्टि से गंभीर चीज़ लिखने के लिए एकांत ज़रूरी था। तभी मैं परिचित 'सभ्य' लोगों की बस्ती से अलग मनाली में आ जमा था।

मनाली स्थिति के कारण ही नहीं, सौन्दर्य के कारण भी देवताओं के अंचल का सुनहला ऊपरी छोर है। दृष्टि-क्षेत्र में सीखचे-ही-सीखचे देखने की आदी मेरी आँखें इस विराट सौन्दर्य को पीती जाती थीं और मानो अपने पर विश्वास नहीं कर पाती थीं..... सीखचों का संस्कार इतना गहरा पड़ गया था कि मैं बाहर बिखरी हुई सौन्दर्य-राशि को देखकर भी भीतर से बन्दी जीवन की पुरानी-पुरानी स्मृतियाँ निकालता जाता था जैसे शाही पोशाक में लिपट कर भी भिखमंगा अपनी फटी हुई और थिगरों से भूषित गुदड़ी को नहीं भूलता। लेकिन मनाली ने मानो उन स्मृतियों पर अपनी छाप डाल दी। वे अपने-आप में कटु स्मृतियाँ मानो सुन्दरता के एक ढाँचे में ढलकर निकलने लगीं। पहले ही दिन मैंने पाया कि 'प्रिज़न डेज़ एंड अदर पोएम्स' नाम के एक आगमिष्यत् कविता संग्रह का सूत्रपात हो गया है। और जब मैं महीने भर बाद लौटा तब वह पूर्ण-सा हो चुका था।

लेकिन मुझे उपन्यास लिखना था। मैंने मकान के छज्जे पस मेज़-कुर्सी डाल ली, पुराने लिखे और टाइप किये हुए कागज़, हाथ से घसीटे हुए नोट और ढेर-से फुलस्केप कागज़ सामने रख लिये।

पर आँखें भटकने लगीं। कभी बाहर दूर भागते हुए बादलों पर और शांत भाव से उन्हें देखते हुए गंभीर चीड़ वृक्षों पर, कभी निकट की बाउड़ी पर पानी भरती हुई स्वस्थ, बेधड़क राजपूतनियों पर, कभी अपने ही मकान की बाहरी दीवार पर, जिस पर पिछले वर्ष का एक 'शिलालेख' अभी तक बना ही हुआ था -

“....., ...,एंड.....स्पेंट सिक्स मेमोरेबल डेज़ एंड नाइट्स हियर, 11 टू 17 जुलाई 1934"

....अमुक अमुक व्यक्तियों ने छः स्मरणीय दिन और रातें यहाँ पर बितायीं, 11 से 17 जुलाई, 1934|

'स्मरणीय' ? यहाँ का एक-एक क्षण आत्मा पर अपनी एक अमिट छाप डालता हुआ चला जाता है...

अगले दिन प्रातःकाल ही देवताओं के अंचल में बैठे हुए एक क्षुद्र मानव ने पाया कि वह भी देवों का समकक्षी हो गया है, स्रष्टा हो गया है, वह लिखने लगा....|

*****

5. चिकित्सा का चक्कर

बेढब बनारसी

लेखक परिचय :बेढब बनारसी का पूरा नाम श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ और उपनाम 'बेढब बनारसी' है। गद्य तथा पद्य दोनों में मौलिक रचनाएँ करनेवाले, आपने समसामयिक धार्मिक आचार-व्यवहार को लेकर व्यंग्य-विनोद की धारा प्रवाहित की है। साधारण विषयों पर हास्य-व्यंग्य शैली में लिखते हुए, आपने विषय को प्रभावशाली बनाया है। डॉ. नगेन्द्र का कथन है "सिर्फ छायावाद युग में ही नहीं, उसके बाद भी समसामयिक धार्मिक आचार-व्यवहार को लेकर इन्होंने व्यंग्य-विनोद की जो धारा प्रवाहित कीवह अपनी व्यावहारिक भाषा-शैली के कारण और भी अधिक उल्लेखनीय है ।"

प्रस्तुत व्यंग्यात्मक निबंध में लेखक ने विषाक्त चिकित्सीय क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, अनाचार, अंधाचार आदि का परदाफाश करते हुए, रोगग्रस्त व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक द्विधापूर्ण यातनाओं का मजेदार हास्य-विनोद-शैली में अंकन किया है।

मैं बिलकुल हट्टा-कट्टा आदमी हूँ। देखने में मुझे कोई भला आदमी रोगी नहीं कह सकता। मेरी आयु लगभग पैंतीस साल की है। आज तक कभी बीमार नहीं पड़ा। लोगों को बीमार देखता था तो मुझे बड़ी इच्छा होती थी कि किसी दिन मैं भी बीमार पड़ता तो अच्छा होता। यह तो न था कि मेरे बीमार होने पर भी दिन में दो बार बुलेटिन निकलते, पर इतना अवश्य था कि मेरे बीमार पड़ने पर हंटले के बिस्कुट - जिन्हें साधारण अवस्था में घरवाले खाने नहीं देते, दवा की बात और है - खाने को मिलते। 'यू.डी. कलोन' की शीशियाँ सिर पर कोमल करों से बीवी उँडेलकर मलती। और सबसे बड़ी इच्छा तो यह थी कि दोस्त लोग आकर

मेरे सामने बैठते और गंभीर मुद्रा धारण करके पूछते, कहिए बेढबजी, कैसी तबीयत है ? किसकी दवा हो रही है ? कुछ फ़ायदा है ? जब कोई इस प्रकार से रोनी सूरत बनाकर ऐसे प्रश्न करता, तब मुझे बड़ा मज़ा आता और उस समय मैं आनन्द की सीमा के उस पार पहुँच जाता।

हाँ, तो एक दिन मैं हॉकी खेल कर आया। कपड़े उतारे, स्नान किया। शाम को ही भोजन कर लेने की मेरी आदत है, पर आज मैच में रिफ्रेशमेन्ट ज़रा ज्यादा खा गया था, इसलिए भूख न थी । श्रीमतीजी ने खाने को पूछा । मैंने कह दिया कि आज स्कूल में मिठाई खाकर आया हूँ, कुछ विशेष भूख नहीं है। उन्होंने कहा, "विशेष न सही साधारण सही । मुझे आज सिनेमा जाना है। तुम अभी खा लेते तो अच्छा था । संभव है, मेरे आने में देर हो ।"मैंने फिर इंकार नहीं किया, उस दिन थोड़ा ही खाया। बारह पूरियाँ थीं और वही रोज़वाली आध पाव मलाई खा चुकने के बाद पता चला कि 'प्रसाद' जी के यहाँ से बाग बाज़ार का रसगुल्ला आया है। रस तो होगा ही । कल तक संभव है, कुछ खट्टा हो जाए । छह रसगुल्ले निगलकर मैंने चारपाई पर धरना दिया । रसगुल्ला छायावादी कविताओं की भाँति सूक्ष्म नहीं थे, स्थूल थे । एकाएक तीन बजे रात को नींद खुली। नाभि के नीचे दाहिनी ओर पेट में मालूम पड़ता था, कोई बड़ी-बड़ी सुइयाँ लेकर कोंच रहा है। परंत मुझे भय नहीं मालूम हुआ, क्योंकि ऐसे ही समय के लिए औषधियों का राजा, रोगों का रामबाण, अमृतधारा की एक शीशी सदा मेरे पास रहती है। मैंने तुरंत उसकी कुछ बूँदें पान कीं दोबारा दवा पी। तिबारा। 'पीत्वा-पीत्वा पुनः पीत्वा' की सार्थकता उसी समय मुझे मालूम हुई। प्रातःकाल होते-होते शीशी समाप्त हो गई। दर्द में किसी प्रकार कमी न हुई। प्रातःकाल एक डॉक्टर के यहाँ आदमी भेजना पड़ा।

डॉक्टर साहब सरकारी अस्पताल के थे। वे एक इक्के पर तशरीफ़ लाए । सूट तो वे ऐसा पहने हुए थे कि मालूम पड़ता था, प्रिंस ऑफ वेल्स के वैलेटों में हैं। ऐसे सूटवाले का इक्के पर आना वैसा ही मालूम हुआ, जैसा लीड़रों का मोटर छोड़कर पैदल चलना । मैं अपना पूरा हाल भी न कहने पाया था कि आप बोले, "ज़बान दिखलाइए ।"प्रेमियों को जो मज़ा प्रेमिकाओं की आँख देखने में आता है, शायद वैसा ही डॉक्टरों को मरीज़ों की जीभ देखने में आता है। डॉक्टर महोदय मुस्कराए । बोले, "घबराने की कोई बात नहीं है। दवा पीजिए, दो खुराक पीते-पीते आपका दर्द वैसे ही गायब हो जाएगा, जैसे हिन्दुस्तान से सोना गायब हो रहा है ।"मैं तो दर्द से बेचैन था। डॉक्टर साहब साहित्य का मज़ा लूट रहे थे । चलते-चलते बोले, "अभी अस्पताल खुला न होगा, नहीं तो आपको दवा मँगानी न पड़ती। खैर, चंद्रकला फ़ार्मेसी से दवा मँगवा लीजिएगा। वहाँ दवाइयाँ ताज़ी मिलती हैं। बोतल में पानी गर्म करके सेंकिएगा।"दवा पी गई। गर्म बोतलों से सेंक एनी आरंभ हुई । सेंकते-सेंकते छाले पड़ गए, पर दर्द में कमी न हुई।

दोपहर हुआ, शाम हुई, पर दर्द ने मुझसे ऐसा प्रेम की दिखलाया कि हटने का नाम दूर । लोग देखने के लिए आने ने लगे। मेरे घर पर मेला लगने लगा । ऐसे-ऐसे लोग आए कि । कहाँ तक लिखूँ । हाँ, एक विशेषता थी, जो आता एक-न-एक नुस्खा अपने साथ लेता आता था । किसी ने कहा, अजी कुछ के नहीं, हींग पिला दो। किसी ने कहा, चूना खिला दो । खाने के म लिए सिवा जूते के और कोई चीज़ बाकी नहीं रह गई, जिसे का लोगों ने न बताई हो ।

तीन दिन बीत गए, दर्द में कमी न हुई । लोग आते ना मुझे देखने के लिए, पर चर्चा छिड़ती थी, "प्रसाद जी का अमुक ना नाटक रंगमंच की दृष्टि से कैसा है? राय कृष्णदास हफ्ते में नौ टों बार दादी क्यों बनाते हैं ?"मुझे भी कुछ बोलना ही पड़ता व्यथा । ऊपर से पान और सिगरेट की चपत अलग। भला दर्द . में क्या कमी हो ।

आखिर में लोगों ने कहा कि तुम कब तक इस तरह पड़े रहोगे, किसी दूसरे की दवा करो । लोगों की सलाह से डॉक्टर चूहानाथ कातरजी को बुलाने की सलाह हुई । आप लोग डॉक्टर साहब का नाम सुनकर हँसेंगे, पर यह मेरा दोष नहीं है, उनके माँ-बाप का दोष है। यदि मुझे उनका नाम रखना होता तो अवश्य ही कोई साहित्यिक नाम रखता । वे थे यथा नाम तथा गुण । आपकी फ़ीस आठ रुपये थी और मोट का एक रुपया अलग । आप लंदन के एफ.आर.सी.एस. थे । कुछ लोगों का सौंदर्य रात में बढ़ जाता है, वैसे है डॉक्टरों की फीस रात में बढ़ जाती है। खैर, डॉक्टर साहदबुलाये गए । आते ही हमारे हाल पर रहम किया और बोले "मिनटों में दर्द गायब हुआ जाता है, थोड़ा पानी गरम कराइए तब तक यह दवा मँगवाइए ।"एक पुर्जे पर आपने दव लिखी । पानी गर्म हुआ । दो रुपये की दवा आई । डॉक्टर बाढ़ ने तुरंत एक छोटी-सी पिचकारी निकाली, उसमें एक लंबी सुई लगाई, पिचकारी में दवा भरी और मेरे पेट में वह सुई कोंचकर दवा डाली ।

डॉक्टर साहब कुछ कहकर और मुझे सांत्वना देकर चले गए । इसके बाद मुझे नींद आ गई और मैं सो गया । मेरी नींद कब खुली, कह नहीं सकता, पर दर्द में कमी हो चली थी और दूसरे दिन प्रातःकाल पीड़ा रफूचक्कर हो गई थी ।

कोई दो सप्ताह मुझे पूरा स्वस्थ होने में लगे । बराबर डॉक्टर चूहानाथ कातरजी की दवा पीता रहा । अठारह आने की शीशी प्रतिदिन आती रही । दवा के स्वाद का क्या कहना । = शायद मुर्दे के मुख में डाल दी जाए तो तिलमिला उठे । पंद्रह दिन के बाद मैं डॉक्टर साहब के घर गया उन्हें धन्यवाद देने के = लिए । मैंने पूछा कि अब तो दवा पीने की कोई आवश्यकता न होगी । वे बोले, "यह तो आपकी इच्छा पर है । पर यदि आप काफ़ी एहतियात न करेंगे तो आपको 'अपेंडिसाइटीज' हो जायेगा। आपकी श्रीमती जी बड़ी भाग्यवती हैं । अगर छह घंटे हर की देर और हो जाती तो उन्हें जिंदगी-भर रोना पड़ता । वह तो कहिए कि आपने मुझे बुला लिया, अभी कुछ दिनों दवा कीजिए ।"

ही ब इसी बीच में डॉक्टर महोदय ने ऐसे-ऐसे मर्जी के नाम 1. सुनाए कि मेरी तबीयत फड़क उठी । भला मुझे ऐसे मर्ज हुए, -. जिनका नाम साधारण क्या बड़े पढ़े-लिखे लोग भी नहीं जानते । ■मालूम नहीं ये मर्ज सब डाक्टरों को मालूम हैं कि केवल हमारे तू डॉक्टर कातरजी को ही मालूम हैं। खैर, मैंने दवा जारी रखी ।

ई अभी एक सप्ताह भी पूरा न हुआ था कि दो बजे दिन र को एकाएक फिर दर्द रूपी फौज़ ने मेरे शरीर रूपी किले पर हमला कर दिया । डॉक्टर साहब ने जिन-जिन भयंकर मर्जी का र नाम लिया था, उनका स्वरूप मेरी रोती हुई आँखों के सामने नृत्य करने लगा। मैं सोचने लगा कि हुआ हमला उन्हीं में से ■किसी एक मर्ज का । तुरंत डॉक्टर साहब के यहाँ आदमी दौड़ाया गया कि इंजेक्शन का सामान लेकर चलिए । वहाँ से - आदमी बिना माँगी पत्रिका की भाँति लौटकर आया कि डॉक्टर - साहब

कहीं गए हैं । इधर मेरी हालत क्या थी, उसका वर्णन यदि सरस्वती शार्टहैण्ड से भी लिखें तो संभवतः समाप्त न हो । हवाई जहाज़ के पंखे की तेज़ी के समान तो करवटें बदल रहा था । इधर मित्रों और घरवालों की कांफ्रेंस हो रही थी कि अब कौन बुलाया जाए, पर निशस्त्रीकरण सम्मेलन की भाँति कोई न किसी की बात मानता था, न कोई निश्चय ही हो पाता था । मालूम नहीं, लोगों में क्या-क्या बहस हुई, कौन-कौन प्रस्ताः फेल हुए, कौन-कौन पास । अंत में हमारे मकान के बगल रहने वाले पंडितजी की विजय हुई और आयुर्वेदाचार्य, रसज्ञरंजन, चिकित्सा-मार्तड, कविराज पंडित सुखदेव शास्त्री को बुलाने की बात तय हुई । एक सज्जन उन्हें बुलाने के लिए भेजे गए । कोई पैंतालीस मिनट बीत गए, परंतु न वैद्यजी आए, न भेले गए सज्जन का ही पता चला। एक ओर दर्द आयकर की तरह बढ़ता जा रहा था, दूसरी ओर इन लोगों का भी पता नहीं । और भी बेचैनी बढ़ी, अंत में जो साहब गए थे, लौटे । वे बोले, "वैद्यजी ने बड़े गौर से पत्रा देखा और कहा कि अभी बुद्ध के क्रांति वृत्त में शनि की स्थिरता है, इकतीस पल नौ विपल में शनि बाहर हो जाएगा और डेढ़ घटी एकादशी का योग है। उसके समाप्त होने पर मैं चलूँगा । सुनकर मेरा कलेजा कबाब हो गया । मगर वे कह आए थे, अतएव बुलाना भी आवश्यक था । मैंने फिर उन्हें भेजा। कोई आध घंटे बाद वैद्यजी एक पालकी पर तशरीफ़ लाए। आकर आप मेरे सामने कुर्सी पर बैठ गए । आप धोती पहने हुए थे और कंधे पर एक सफ़ेद दुपट्टा डाले हुए थे । इसके अतिरिक्त शरीर पर सूत के नाम पर केवल जनेऊ था, जिसका रंग देखकर यह शंका होती थी कि कविराजजी कुश्ती लड़कर आ रहे हैं। वैद्यजी ने कुछ और न पूछा । पहले नाड़ी हाथ में ली । पाँच मिनट तक एक हाथ की नाड़ी देखी, फिर दूसरे हाथ की । बोले, "वायु का प्रकोप है, यकृत से वायु घूमकर पित्ताशय

में प्रवेश कर आंत में नाव पहुँची है। इससे मंदाग्नि का प्रादुर्भाव होता है और इसी में कारण जब भोज्य पदार्थ प्रतिहत होता है, तब शूल का कारण र्य, देता है।"कविराज जी मालूम नहीं क्या बक रहे थे और मेरी को बीयत दर्द और क्रोध के एक दूसरे ही संसार में छटपटा रही जेगी। आखिर मुझसे न रहा गया । मैंने एक सज्जन से कहा, नजरा आलमारी में से 'आप्टे' का कोश तो लेते आइए । यह की चुनकर लोग चकराए । कुछ लोगों को संदेह हुआ कि अब मैं ना होश में नहीं हूँ। मैंने कहा, दवा तो पीछे होगी, मैं पहले समझ ये तो लूँ कि मुझे रोग क्या है । तत्पश्चात् वैद्यजी 'चरक', 'सुश्रुत' के श्लोक सुनाने लगे। और अंत में कहा, देखिए, मैं दवा देता और अभी आपको लाभ होगा । पंडितजी ने दवा दी । कहा कि अदरख के रस में इस औषधि का सेवन करना होगा । खैर - माहब, फीस दी गई। किसी प्रकार वैद्यजी से पिण्ड छूटा । वा दिन दवा की गई । कभी-कभी तो कम अवश्य हो जाता था, पर पूरा दर्द न गया । सी.आई.डी. के समान पीछा छोड़ता ही न था।

चारपाई पर पड़ा रहने लगा। दिन को मित्रों की मंडली आती थी । वह आराम देती थी कम, दिमाग चाटती थी अधिक । एक सज्जन मुझे देखने के लिए तशरीफ़ लाए थे । बोले, "साहब, आप लोगों को देश का हर समय ध्यान रखना चाहिए । आप किसी भारतीय हकीम अथवा वैद्य को दिखलाइए ।"मैंने मन में सोचा कि वैद्य महाराज को तो मैंने दिखा ही लिया, हकीम भी सही। हकीम साहब आए । यद्यपि मैं अपनी बीमारी का जिक्र और अपनीं बेबसी का हाल लिखना चाहता हूँ, पर हकीम साहर की पोशाक और उनके रहन-सहन तथा फ़ैशन का जिक्र करना मुझसे न हो सकेगा । सर्दी बहुत तेज़ नहीं थी बनारस में कभी बहुत तेज़ सर्दी नहीं पड़ती । फिर भी ऊनी कपड़ा पहनने का समय आ गया था। परंतु हकीम

साहब चिकन का बंददार-अंगा पहने हुए थे। सिर पर बनारसी लोटे की तरह टोपी रखी हुई थी। पाँव में पाजामा ऐसा मालूम होता था कि चूड़ीदार पाजामा बनने वाला था, परंतु दर्जी ईमानदार था, उसने कपड़ा चुराया नहीं, सबका सब लगा दिया अथवा यह भी हो सकता है कि ढीली मोहरी के लिए कपड़ा दिया गया हो, दर्जी ने कुछ कतर-ब्योंत की हो और चुस्ती दिखाई हो । जूता कामदार दिल्ली वाला था । हकीम साहब पतले-दुबले इतने थे कि मालूम पड़ता था, अपनी तंदुरुस्ती अपने मरीजों को बाँट दी है। हकीम साहब में नज़ाकत भी बला की थी । रहते थे बनारस में, मगर कान काटते थे लखनऊ के ।

आते ही मैंने सलाम किया, जिसका उत्तर उन्होंने मुस्कराते हुए बड़े अंदाज से दिया और बोले, "मिज़ाज कैसा है?"

मैंने कहा, "मर रहा हूँ । बस, आपका ही इंतजार था । अब यह ज़िन्दगी आपके ही हाथों में है।"

हकीम साहब ने कहा, "या रब ! आप तो ऐसी बात करते हैं, गोया ज़िंदगी से बेजार हो गए हैं। भला ऐसी गुफ्तगू जक्र ही कोई करता है ।

मरें आपके दुश्मन, नब्ज़ तो दिखाइए । साहब खुदाबंदकरीम ने चाहा तो आनन-फानन में दर्द रफूचक्कर न होगा।"

मैंने कहा, "अब आपकी दुआ है । आपका नाम बनारस कनी ही नहीं, हिन्दुस्तान में लुकमान की तरह मशहूर है, इसीलिए हब आपको तकलीफ़ दी गई है।"

दस मिनट तक हकीम ने नब्ज़ देखी। फिर बोले, "मैं ता नुस्खा लिखे देता हूँ। इसे इस वक्त आप पीजिए, इंशा अल्लाह द्वार ज़रूर शिफ़ा होगी ।"

नोटे पह हकीम साहब चलने को तैयार हुए । उठे । उठते-उठते हो, बोले, "ज़रा एक बात का ख्याल रखिएगा कि आजकल दवाइयाँ ता लोग बहुत पुरानी रखते हैं । मेरे यहाँ ताज़ा दवाइयाँ रहती थे हैं।"

दी दर्द फिर कम हो चला । परंतु दुर्बलता बढ़ चली थी । ये कभी-कभी दर्द का दौरा भी अधिक वेग से हो जाता था । घरवालों को और मुझे भी दर्द के संबंध में विशेष चिन्ता होने ने लगी। कोई कहता था कि लखनऊ जाओ, कोई एक्स-रे का नाम लेता था । किसी-किसी ने राय दी कि जल-चिकित्सा कीजिए । एक सज्जन ने कहा, यह सब कुछ नहीं, आप होमियोपैथी इलाज शुरू कीजिए । देखिए, कितनी शीघ्रता से लाभ होता है। बोले, "साहब इन नन्हीं-नन्हीं गोलियों में मालूम नहीं कहाँ का जादू है ! साहब, जादू का काम करती है, जादू का !"

एक प्रकृति-चिकित्सा वाले ने कहा कि आप गीली मिट्टी पेट पर लेपकर धूप में बैठिए । एक हफ्ते में दर्द हवा हो जाएगा । हमारे ससुर साहब एक डॉक्टर को लेकर आए उन्होंने कहा, "देखिए साहब, आप पढ़े-लिखे आदमी हैं समझदार हैं ।"मैं बीच में बोल उठा, "समझदार न होता तो आपको कैसे यहाँ बुलाता ।"

इसी बीच में मेरी नानी की मौसी मुझे देखने आईं ! उन्होंने बड़े प्रेम से देखा । देखकर बोलीं, "मैं तो पहले ही सोच रही थी कि यह कुछ ऊपरी खेल है ।"मैंने पूछा, "यह ऊपरी खेल क्या है नानी जी ?"बोलीं, "बेटा, सब कुछ किताब में ही थोड़े लिखा रहता है। बात यह है कि किसी चुड़ैल का फ़साद है ।"मेरी स्त्री और माता की ओर दिखाकर कहने लगीं, "देखो न इसकी बरौनी कैसी खड़ी है। कोई चुड़ैल लगी है। किसी को दिखा देना चाहिए ।"मैंने कहा, "डॉक्टर तो मेरी जान के पीछे लग गए हैं। क्या चुड़ैल

उनसे भी बढ़कर है ?"जब सब लोग चले गए तब मेरी पत्नी ने कहा, "तुम लोगों की बात क्यों नहीं मान लिया करते ? कुछ हो या न हो, इसमें तुम्हारा हर्ज ही क्या है?"मेरे दर्द में किसी विशेष प्रकार की कमी न हुई । ओझा से तो किसी प्रकार की आशा क्या करता ? पर बीच-बीच में दवा भी होती जाती थी।

कुछ लाभ अवश्य हुआ, पर पूरा फ़ायदा न हुआ । मैंने अब पक्का इरादा कर लिया कि लखनऊ जाऊँ। जो बात काशी में नहीं हो सकती, लखनऊ में हो सकती है । वहाँ सभी साधन हैं।

सब तैयारी हो चुकी थी कि इतने में एक और डॉक्टर को एक मेहरबान लिवा लाए। उन्होंने देखा, कहा, "जरा मुँह तो देखूँ ।' मैंने कहा, "मुँह जीभ जो चाहे देखिए ।"देखकर नो बड़े जोर से हँसे । मैं घबराया, ऐसी हँसी केवल कवि-सम्मेलन में बेढंगी कविता पढ़ने के समय सुनाई देती है। मैं चकित भी हुआ । डॉक्टर बोले, "किसी डॉक्टर को यह सूझी नहीं, तुम्हें 'पाइरिया' है। उसी का ज़हर पेट में जा रहा है और सब फ़साद पैदा कर रहा है।"मैंने कहा, "तब क्या करूँ ?"डॉक्टर साहब ने कहा, "इसमे करना क्या है ? किसी दंत-चिकित्सक के यहाँ जाकर सब दाँत निकलवा दीजिए।"मैंने अपने मन में कहा, आपको यह तो कहने में कुछ कठिनाई ही नहीं हुई । गोया दाँत निकलवाने में कोई तकलीफ ही नहीं होती । खैर, रात भर मैंने सोचा। मैंने भी यही निश्चय किया कि यही डॉक्टर ठीक कहते हैं । दंत चिकित्सक के यहाँ से पुछवाया । उसने कहलाया कि तीन रुपये फी दाँत तुड़वाने के लिए लगेंगे । कुल दाँतों के लिए छियानबे रुपये लगेंगे । मगर मैं आपके लिए छह रुपये छोड़ दूँगा । इसके अतिरिक्त दाँत बनवाई डेढ़ सौ अलग। यह सुनकर पेट के दर्द के साथ सिर में भी चक्कर

आने लगा। मगर मैंने सोचा कि जान सलामत है तो सब कुछ । इतना और खर्च करो । श्रीमती से मैंने रुपये मांगे । उन्होंने पूछा, "क्या होगा ?"मैंने सारा हाल कह दिया। वे बोलीं, "तुम्हारी बुद्धि कहीं घास चरने गई है ? आज कोई कहता है दाँत उखड़वा डालो, कल कोई कहेगा, सारे बाल उखड़वा डालो, परसों कोई डॉक्टर कहेगा, नाक नुचवा डालो, आँख निकलवा दो। यह सब फिजूल है । खाना ठिकाने से खाओ । पंद्रह दिन में ठीक हो जाओगे। मैंने कहा, "तुम्हें अपनी ही दवा करनी थी तो इतने रुपये क्यों बर्बाद कराए ?"

*****

6. माध्यम

शशिप्रभाशस्त्री

लेखक परिचय: डॉ.शशिप्रभा शास्त्री का जन्म मेरठ में सन 1923 इसवी में एक प्रतिष्ठित कायस्त परिवार में हुआ था | इनके पिताजी वकील थे और माताजी उदार विचारोवाली समाज सुधारक सुशिल महिला थी | आपने दिल्ली विश्वविद्यालय से संस्कृत, तथा हिंदी में एम्.ए. की उपाधि प्राप्त की है | आपने 'हिंदी के पौराणिक नाटको के मूलस्तोत्र' विषय पर अनुसंधान कर पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की है | आप सम्प्रति महादेवी पोस्ट ग्रजुएट कॉलेज के रीडर पद से सेवानिवृत्त हो चुकी है |

डॉ.शशिप्रभा शास्त्री की रचनाएँ- वीरान रास्तेऔर झरना, नावे,परछाईयो के पीछे, खामोश होते सवाल और मीनारे आदि उपन्यास है| कहानी संग्रह धुली हुई शाम, जोड़ बाकि, दो कहानियो के बीच,और एक टुकड़ा शांतिरथ| यात्रा साहित्य:सागर का संसार, राजा की तरह (डायरी)| बाल साहित्य - पुल के पार (उपन्यास), आसमान की मेज (कहानी संकलन),फूलऔर सपना आदि |

'सच ?'

'सच बहन जी, और क्या, यह तो इनके भइया की ही सिफत समझो कि ये अपनी बहन को और अपने पूरे परिवार को इतनी खूबी से संभाल रहे हैं। हमारा क्या है। हम तो ऐसे घर-परिवार के हैं, जहां लड़कियों को पति की हां में हां मिलाना ही सिखाया जाता है।' कहते-कहते गृहपत्नी ने बच्ची की बिछौनी तहा करके रख दी। बच्ची को सुलोचना उठा कर ले

गयी। भाभी की कही हुई बात उसके कानों में नहीं पड़ी थी। बाहर आंगन से सुलोचना की आवाज आ रही थी। भतीजी को दुलारने और बलैया लेने के प्रयास में मेना की तरह से गूंजती उसकी अद्भुत बहक धीरे-धीरे दूर होती चली गयी, तो बात फिर शुरू हो गयी।

'जब अपने घर से आयीं तो सोलह-सत्रह की होंगी। अब ये करीब तीस की होने जा रही हैं, हमारे पास आये इन्हें चौदह बरस हो गये है।' खाली बैठी गृहपत्नी ने अब पानदान खींच कर पान लगाना शुरू कर दिया था।

'चौदह बरस कम नहीं होते ।'

'कम नहीं होते, पर अब तो लगता है बहन जी, वह बात कभी हुई ही नहीं थी। हम कभी जिक्र भी करती हैं, तो ये रोने लगती हैं। कहती हैं: भाभी तुम हमें चीर के डाल दो, पर हमसे तुमने अब कभी उधर लौट जाने की बात कहीं तो हमसे बुरा कोई नहीं होगा। हम रेल के नीचे कट के मर जायेंगी ।.. सो सुनते हैं और रह जाते हैं।'

'आखिर ऐसी भी क्या बात हुई ?'

'अब हुई ही होगी कुछ बात, हमसे तो यही कहती हैं, कि हम नहीं जायेंगी! यहां तक कि इनके ससुर लेने आये तब भी नहीं गयीं।'

'आखिर कुछ तो हुआ ही होगा, आयीं कैसे थीं ?'

'आयीं तो क्या, अपने भइया को लिख दिया, हमें आ के यहां से ले जाओ। और फिर आप तो जानती ही हैं इनके भइया को। गये और बहाने से लिवा लाये, तब से यहीं हैं।'

'भइया ने कुछ तो पूछा होगा, कि भई आखिर तुम्हें वहां क्या तकलीफ थी कि तुमने हमें ऐसा लिखा और हमें ताबड़तोड़ पहुंच कर तुम्हें से लाना पड़ा?'

'पूछा होगा, हम तो बस यही जानती हैं कि सास-ननद भली नहीं घीं, बात-बात पर तकरार करती थीं, सारा द्वंद्व उन्होने ही उठाया और अब तो सच पूछो, हम भी सब कुछ भूल गये हैं। हमने भी लिया है, भई तुम्हें यहां सुख मिलता है तो तुम यहां रहो, हमें भी कुछ मदद ही मिल जाती है।'

'फिर भी मैं आपको दाद दूंगी कि आप खूब निभा रही हैं। आज के जमाने में अपनी सास-ननद को सिर पर लाद कर कौन रखता है और सास की तो चलो जाने दो उसे लादना ही पड़ता है, उसका हक भी बनता है, पर ननद की इल्लत ....।'

'चलिए ये तो भाभी जी, उस ईश की किरपा है, जितना कुछ भी हमसे करवा रहा है। और सच पूछो तो सब कुछ वही करवा रहा है, नहीं तो जितनी इनके भइया की तनखवाह है, उतने में एक मियां-बीवी का ही पूरा नहीं पड़ता यहां सास हैं, ये ननद हैं, अपनी बच्चियां हैं, छह जन तो यही हो गये, कुत्ते-बिल्ले सो अलग और हम दो तो हैं ही।'

श्रीमती चंद्रिका सहाय जिस बात पर आना चाहती थीं, वह बात अभी तक संयोगवश नहीं पूछ पा रही थीं, अब उगल ही दी उन्होंने किसी प्रकार 'वहां जाने की बिलकुल मर्जी नहीं थी तो दूसरी शादी की बात तो सुमेद भाई सोच ही सकते थे ?'

'सोची भी और सुझावी थी, पर इन्होंने तो साफ इनकार कर दिया ।'

'अरे।' 'बस यही बोलीं, अगर तुम हमारा कुछ भला करना चाहती हो तो अब हम तुम्हारे ऊपर आन तो पड़ी ही है, तुम तो भइया अब हमें पढ़ा दो, सो इनके भइया ने इनको दाखिल करवा दिया। छठी पास थीं आठवीं पास की, और आठवें के बाद दसवीं की। दसवीं में दो बार फेल हुई। आठवीं का इम्तहान तो तुम सोचो पिराइवेट इम्तिहान था, कह-सुन के किलास चढ़वा दी, पर हाई स्कूल का तो पक्का इम्तिहान होता हैं बोर्ड का। तो वहां भी सिफारिश पहुंचाने की कोशिश तो की, पर कामयाबी नहीं मिली, अगले साल ही पास हो पायीं ।'

'इसका मतलब पढ़ने में अच्छी नहीं हैं ?'

'राम भजो । पढ़ना-पढ़ना कहती जरूर हैं, पर कुछ उस दिमाग की हैं। अब सारे दिन क्या करें, सो इनके भइया ने छोटे बच्चों को पढ़ाने के लिए इन्हें एक छोटे-से स्कूल में किसी की सिफारिश से जगह दिलवा दी हैं। वहीं पढ़ाने जाती हैं, तीन-चार घंटे उधर ही निकल जाते हैं।'

'कुछ तनख्वाह भी मिलती होगी ?'

'हां, साठ-पैंसठ रुपये मिल जाते हैं, सो इनके ही काम आते हैं। हमें इनकी तरख्वाह से कोई भतलब नहीं। घर में रहती हैं सो रोटी खा लेती हैं और जो कुछ भी हो सब मिल-बांट के हो जाता है। हां, अपनी भतीजियों के लिए अलबत्ता कुछ छोटी-मोटी चीज़ ले आती हैं। हम तो उसके लिए भी मना करती है, पर इन्हें इसमें खुशी होती है, सो हम भी अब कुछ नहीं कहतीं ।'

'हूं। शादी क्यों नहीं करना चाहतीं ?' थोड़ी देर रुक कर श्रीमती सहाय ने फिर पूछा ।

'अब राम जाने, इनकी मरजी ।'

'हां, पहली जगह इतने दुख झेले हैं, तो मन डरता होगा।' 'और नहीं तो क्या, यही बात होगी। अब तो इनके भइया सोच रहे हैं इन्हें बी.टी.सी. की टेनिंग करवा दें, तो ज़िन्दगी भर के लिए इनका कमाने-खाने का हीला हो जाये।'

'हूं।' बात को ज़्यादा लंबा खींचना अब अधिक शोभनीय प्रतीत नहीं हो रहा था। इसलिए श्रीमती चंद्रिका सहाय ने प्रकरण को समाप्त करना ही ठीक समझा ।

सुमेद बाबू अभी नये-नये ही इस मुहल्ले में आये थे। सहाय साहब के जूनियर असिस्टेंट थे, पर भले से आदमी थे और इसी मुहल्ले में उन्हें भी मकान मिल गया था, तो उनकी पत्नी से जान-पहचान कर लेना श्रीमती सहाय को कुछ अनुचित प्रतीत नहीं हुआ। फिर आज तो सुमेद बाबू ने खुद ही अपने बांस और उनकी पत्नी को अपने घर पर आमंत्रित किया था। खाने के बाद सुमेद बाबू की बहन सुलोचना के संबंध में बात चल पड़ी थी। सुमेद बाबू को इस मुहल्ले में आये चार महीने हुए थे और उनकी शादीशुदा बहन का उनके घर में अविवाहित लड़की की तरह रहना मुहल्ले वालों की आंखों में खटक रहा था। श्रीमती चंद्रिका सहाय को आज मौका मिला तो वे पूछ ही बैठीं। चौदह लम्बे वर्षों से सुलोचना भाई के धर में ही है - ये आश्चर्य कर रही थीं, पर वह मूल सवाल अब भी ज्यों का त्यों सिर उठाये खड़ा था-बहुत चाहने पर भी वे अभी तक उस पर उंगली नहीं रख पायी थीं। जो थोड़ी-बहुत बात उस संबंध में हो गयी वह भी

इसलिए कि पतिदेव को खाने के बाद कुछ देर के लिए सुमेद बाबू बैठक में ले गये थे और दोनों जन वहीं बतियाने लगे थे।

पान की तश्तरी बैठक में भी पहुंची थी और पान खाने के बाद ही पति-पत्नी धर चले आये थे। घर आ कर भी हृदय शांत नहीं हो पाया था। चौदह लंबे वर्ष से एक सधवा सीधी-सादी युवती, जिसके आचरण के बारे में शक-शुबहे की बात ही नहीं थी। अपने पीहर में बराबर रहती आ रही है। आखिर क्यों ? एक बड़ा प्रश्न भीतर बैठा-बैठा मथता रहा था, 'सिर्फ गौरी ही थोड़ी, सभी बच्चियां करती हैं, छोटी-बड़ी सब-सब हमारे सामने पैदा हुई हैं, सब हमारे हाथों में खेलीं पलीं, पर ये गौरी कुछ ज़्यादा ही चिपट्ट हैं।'

'अच्छा-अच्छा, बैठो चाय तो पियो ।' मन में कुलबुलाता कीड़ा फिर रेंगने लगा था। आखिर ऐसा भी क्या, कि इतने एकांत में, इतने करीब आकर वह बैठ गयी है और तुम फिर भी न पूछ सको ।

'चाय तो भाभी जी, हम फिर कभी पियेंगी। कहा न आपसे गौरी की दवा लानी है हमें ।'

'ठीक है, पर दवा के लिए मैं नौकर भेज देती हूं, तब तक इधर ही बैठो । यहां गोरी कौन देखने आ रही है कि बुआ दवा ला रही हैं या नहीं। वैदजी का परचा इसे पकड़ा दो और हाल बता दो !'

'तुर्खी !' एक अटपटा-सा नाम लेकर श्रीमती चंद्रिका सहाय ने आवाज लगायी, तो एक पन्द्रह-सोलह बरस का लड़का ऊंट की तरह दौड़ता चला आया ।

जी बहू जी ।'

'यह परचा सीताराम वैद के यहां ले जओ, जानते हो न उनकी दुकान! और लो ये पैसे । तुरंत दवा ले कर आओ और हां इन बीवी जी से हाल पूछ लो मरीज का और सीधे चले जाओ, जल्दी लौटना है तुम्हें।' और वाक्य को खत्म करते-करते श्रीमती चंद्रिका सहाय पैसे लाने उठ खड़ी हुई|

'वैसे तो भाभी जी मेरे पास हैं।' सुलोचना ने पीछे से पुकार कर कहा, पर वह आवाज़ भीतर ही भीतर दब कर गयी। श्रीमती सहाय का स्वर कुछ इस प्रकार का आदेशात्मक था, कि सुलोचना पैसे वाली अपनी गांठ को ज्यों का त्यों थामे बैठी रह गयी। तुर्खी को वह वैदजी का पता और हाल बताने लगी, अंत में बोली, 'लो लौटते हुए आधा किलो धीया, तोरई और दो मौसमी भी लेते आना ।' तुर्खी शायद अपनी मालकिन से भी ज्याता तेज था, बोला, 'ठीक है बीवी जी, पैसे हमारे पास है, हम ले आयेगे।'

तुर्खी पैसे और परचा ले कर चला गया, तो श्रीमती चंद्रिका सहाय ने महरी को चाय लाने का आदेश दे दिया अपने मुद्दे पर आ गयीं, 'बच्चे तुम्हें इतना करते हैं, तो तुम भी तो बच्चों के लिए इतना करती हो । सब बच्चियां, अब तुम कह रही हो, तुम्हारे सामने ही हुई, तुमने ही उन्हें संभाला, भाभी की सेवा की।' असल बिदु पर श्रीमती सहाय फिर भी नहीं आ पा रही थीं।

'तो भाभी जी, हमारे भाई-भावज ने भी तो हमारे लिए इतनाकिया-कौन रखता है अपनी बहन को इतने दिन और फिर हमारे भइया तो भाभी जी, मैं क्या बताऊं, पूरे देवता है। अब देखो अपनी बच्चियां, इतने आये

गये मेहमान, इतनी लंबी-चौड़ी गिरस्ती तो है हो, अम्मा है और हम भी इतने दिन से इन्हीं के सिर पर आना पड़े हैं। अपनी गरज है,

तो भाभी जी सब कुछ देखभाल कर ही चलना पड़ता है।"

"तो आखिर हुआ क्या, ससुराल वाले बहुत बुरे थे या तुम्हारा आदमी बुरा था ? क्या नाम है उनका ?"श्रीमती सहाय ने साथ ही जोड़ दिया ।

'अब भाभी छोड़ो नाम-काम-धाम सब-दरआसल पूछो तो वे लोग रुपये के लोभी थे, बाप तो हमारे थे ही नहीं, तुम जानो भइया जितना कर सकते थे मैं तो कहूंगी अपनी सामर्थ्य से ज्यादा किया उन्होने । हर तरह का दिया-लिया, पर जब उन खल-जानों की आंख तले नहीं आया कुछ, तो अपने भइया और उनकी गिरस्ती को तो हम बिकवाना नहीं चाहते थे।" तभी महरी चाय लगा गयी। 'तो क्या करते थे वे लोग, कैसे प्रगट करते थे उन्हें पैसा चाहिए था ?'

'कैसे-कैसे क्या करते थे, लड़ते-झगड़ते थे। कहते-सुनते थे। अब पूछो भाभी जी। हमें तो अब उधर से कुछ मतलब ही नहीं रह गया है। हम तो अब उन आततायी लोगों की बात सोचती ही नहीं। जब सोचती हैं तभी हमें तो अपनी बच्ची का चेहरा याद आ जाता है।'

'बच्ची का चेहरा ?'

'हां, कुल महीने भर की भी नहीं थी बच्ची, उन हत्यारों ने उसे गरम पानी की बाल्टी में डुवा कर मार डाला। कह दिया हाथ से छूट गयी ।' हाथ में चाय के प्याले के हैंडल को थामे-थामे सुलोचना की आंखों में आंसू भर आये, 'ऐसे घर में तो अब हम भूल के भी नही जायेंगी। हमारे ससुर

हमें लेने आये थे, हमने तो साफ फटकार दिया तो अपना-सा मुंह लेकर गये ।'

'चलो छोड़ो' कुछ और पूछने की गुंजाइश ही नहीं रह गयी थी। कम-से-कम वह बात तो बिलकुल ही नहीं। स्थिति ने बहुत नाजुक मोड़ ले लिया था और वह बिन्दु फिर अनछुआ गया था।

सुलोचना चली गयी थी, प्रश्न अब भी सिर उठाये खड़े था-ऐसी और इन स्थितियों के कारण उस आदिम उत्तेजना पर क्या हमेशा-हमेशा के लिए पड़ जाती है ? राख नहीं पड़ती तो कैसे कटेगी इतनी लंबी जिंदगी । नाक-नक्श बहुत अच्छे नहीं हैं। रंग भी एकदम दवा हुआ मलगजा, कद दरम्याना, बोली-बानी चाल-ढाल सब अनगढ़। तौर-तरीके यों ही अनपढ़-अपरिष्कृत-सब कुछ आनाकर्षक, पर आदिम भावना । वासना तो आदमी के मन में फिर भी जागती ही है। मन के भीतर उस तरह की भावनाएं जड़मूल से कैसे दफन हो सकती हैं-कैंसे पूछे, वे वह सब कुछ-ज़िन्दगी भर शादी नहीं करोगी तो कैसे दफन हो सकती हैं-कैसे पूछे, वे वह सब कुछ-ज़िन्दगी भर शादी नहीं करोगी तो कैसे रहोगी, क्या करोगी ?

नहीं ही कुछ पूछ सकी थीं श्रीमती सहाय वह प्रश्न । तुर्खी आया था तो सुलोचना चींजे थाम कर उनसे नमस्कार कर चली गयी थी, चलते-चलते आमांत्रित कर गयी थी, पर सबसे ऊपर उसकी बात कि 'हमारी भाभी जी तो भाभी जी, हमारी अम्मा जी भी आपको बहुत याद करती है, जरूर आइए ।'

और श्रीमती सहाय सोचती बैठी रह गयी थीं। क्यों सोच रहीं हैं वे इतना ? क्या वे इतनी बच्ची हैं, इतनी अनजान कि दुनिया का उन्हें कुछ

पता ही नहीं। दुनिया में कितने ही लोग तो हैं इस तरह के इतनी स्त्रियां अपने पतियों के द्वारा छोड़ दी जाती हैं और वे पूरी ज़िन्दगी यो ही काट देती हैं खुद को जड़ बना कर ।

वह व्यक्ति जड़ बनता कैसे है? क्यों कुछ उपद्रव नहीं करता, जल्लाद नहीं बन जाता ? सृष्टि के निर्माण का वह सूत्रदार बिन्दु तन-मन में खलबली चला कर उस स्वरूप को प्रदर्शित क्यों नहीं कर देता । क्या मनुष्य इतना शालीन और संकोची जीव है, कि उस सबको वह यों ही पिये बैठा रहता है-अपने विवेक से ? आदमी इतना विवेकी कब से हो गया ? नहीं तो वह राक्षस न बन जाता, जो चिनगारी सुलगने पर वह उछल-कूद मचाता है कि पगिया तक तोड़ डालता है। नहीं-नहीं वह राक्षस नहीं है। जानवर भी नहीं है, पर आदमी तो है ही। उसे भी कुछ उत्पात मचाना ही चाहिए, पर सुलोचना आदमी नहीं, औरत है। औरत, जिसमें काम-भावना पुरुष की अपेक्षा छह गुनी अधिक होती है, पर संकोच उससे भी कई गुना अधिक होती है, उसी संकोच लज्जा और शालीनता के बल पर ही शायद ।

सब कुछ भुला देना चाहा था श्रीमती चंद्रिका सहाय ने, यों वे न जाने क्यों उतना कुछ सोचती रही थीं। क्या जरूरत थी सोचने की दुनिया में दसियों घटनाएं घटती रहती हैं, सैकड़ों हादसे होते रहते हैं। हर एक से आदमी को मतलब ही क्या रहता है, पर आदमी का मन ही तो है-कभी-कभी कोई-कोई बिन्दु उसके मन में इस तरह गड़ जाता है कि निकलने पर ही नहीं आता। वही गत हुई थी श्रीमती चंद्रिका सहाय की। बहुत कुछ मथा उन्होने उस बिन्दु के बारे में-कुछ-कुछ भूलती भी जा रही थीं, तभी उस दिन सुलोचना के बैठे-बैठे ही उनकी एक परिचिता आ पहुंचीं। सुलोचना को देखा तो लगा, दम माधकर रह गयी हो। सुलोचना के चले जाने पर ही

उन्होने बातें शुरू की, 'इस लड़की को आप कब से जानती हैं, श्रीमती सहाय ?'

'कब से जानती हूं, काफी दिनों से।' कुछ अटपटाते-अचरचज भरे स्वर में कहा श्रीमती चंद्रिका सहाय ने ।

'बहन जी, यह लड़की तो बड़ी तेज़ चीज़ है।'

'तेज़ चीज़ है, कैसे ?' चंद्रिका सहाय को अचरज हुआ ।

'ये तो हमारे साथ बी.टी.सी. मैं पढ़ती है-इसे इम्तहान में बैठने से रोक दिया गया है।'

'क्यों ?'

'चोर है यह पक्की। बुरा न मानना बहन जी, जो सच्चाई थी वह मैने आपको बतला दी, आप भी होशियार रहना ।'

'चोऽऽर ! कैसे, यह तो बहुत अच्छे यानी धार्मिक वृत्ति वाले लोगों के परिवार की लड़की है।

'होगी, पर स्कूल में तो इसने न जाने कितनी ही चीजें चुरायी होंगी। चीजें भी बड़ी-बड़ी, छोटी-छोटी सभी तरह की। पेन, इंकपॉट, किताबें, कापियां रबड़-मौका पड़ने पर पैसे भी चुरा लेती है। अभी परसों एक लड़की का ब्लाउज़पीस चुरा लिया इसने, वह दर्जी को देने के लिए अपने साथ स्कूल में ले आयी थी।'

'पता नहीं तुम क्या कह रही हो। इसके भाई-भावज तो बहुत अच्छे हैं।'

'होगे, पर यह भली नहीं है। और तो और, जहां मौका मिलेगा वहां कुछ भी चुरा लेगी। हँसी तो उस दिन आयी, जब हमारी पार्टी हो रही थी। अभी टेबिल पर खाना लगाया ही जा रहा था। बैरों के घूमते-घूमते ही चुपके से इसने दो गुलाब जामून उठाकर मुंह में भर लिये, यह सब वह लड़कियों की आंख बचा कर करना चाहती थी। पर हमारी मानिटर ने देख लिया। उसने पहले उसे खुद डपटा, फिर बड़ी बहन जी से कहा। और तो और, उसने बड़ी जी की एक नयी सेंडिल चुरा ली थी।'

'बस, यह तो वही जाने, बड़ी अजीब लड़की है। जो कुछ जब मिल जाये, चुपके से तभी गप्पss !'

'मुझे तो विश्वास ही नहीं हो रहा है।'

'विश्वास नहीं हो रहा है? आप खुद उससे पूछ लीजिए, हाथ कंगन को आरसी क्या ।'

'अरे अब पूछना गछना क्या, तुम कह रही हो तो ठीक ही होगा। पर अब वह इम्तहान भी नहीं दे सकेंगी, तुमने यही कहा न ?'

'कैसे दे सकेगी, बड़ी बहन ने इसे संस्था से ही निकाल दिया है। उनका कहना है कि चोट्टी औरत टीचर बन कर बैठेगी तो अच्छा लगेगा ?'

'पर उसकी परिस्थितियां भी तो समझे ।'

'कुछ भी परिस्थितियां है, पर ट्रेनिंग क्लास में आचरण का बहुत मूल्य है। तुम हेड अध्यापिका नज़रों में ही गिर जाओ तो कैसा रहे ।'

'वो तो है।' श्रीमती चंद्रिका सहाय इस संदर्भ में और अधिक कहतीं भी क्या-पर उस परिचिता के चले जाने के बाद बहुत देर तक वे फिर सुनमुन हुई बैठी नहीं। जिस बिन्दु को वे आज तक नहीं समझ पा सकी थीं, वह बिन्दु आज अचानक ही उजागर हुआ सामने खड़ा था।

आदिम भावना मरी नहीं थी उसकी, बस उत्पात मचा रही थी- खंड-खंड हो कर ।

*****

7. दो गौरैया (बाल-साहित्य)

भीष्म साहनी

लेखक परिचय: रावलपिंडी पाकिस्तान में जन्मे **भीष्म साहनी** (८ अगस्त १९१५-११ जुलाई २००३) आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख स्तंभों में से थे। १९३७ में लाहौर गवर्नमेन्ट कॉलेज, लाहौर से अंग्रेजी साहित्य में एम ए करने के बाद साहनी ने १९५८ में पंजाब विश्वविद्यालय से पीएचडी की उपाधि हासिल की। भारत पाकिस्तान विभाजन के पूर्व अवैतनिक शिक्षक होने के साथ-साथ ये व्यापार भी करते थे। विभाजन के बाद उन्होंने भारत आकर समाचारपत्रों में लिखने का काम किया। बाद में भारतीय जन नाट्य संघ (इप्टा) से जा मिले। इसके पश्चात अंबाला और अमृतसर में भी अध्यापक रहने के बाद दिल्ली विश्वविद्यालय के ज़ाकिर हुसैन दिल्ली महाविद्यालय में साहित्य के प्रोफेसर बने। १९५७ से १९६३ तक मास्को में विदेशी भाषा प्रकाशन गृह (फॉरेन लॅग्वेजेस पब्लिकेशन हाउस) में अनुवादक के काम में कार्यरत रहे। यहां उन्होंने करीब दो दर्जन रूसी किताबें जैसे टालस्टॉय आस्ट्रोवस्की इत्यादि लेखकों की किताबों का हिंदी में रूपांतर किया। १९६५ से १९६७ तक दो सालों में उन्होंने नयी कहानियां नामक पात्रिका का सम्पादन किया। वे प्रगतिशील लेखक संघ और अफ्रो-एशियायी लेखक संघ (एफ्रो एशियन राइटर्स असोसिएशन) से भी जुड़े रहे। १९९३ से ९७ तक वे साहित्य अकादमी के कार्यकारी समीति के सदस्य रहे।

भीष्म साहनी को हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद की परंपरा का अग्रणी लेखक माना जाता है।[1] वे मानवीय मूल्यों के लिए हिमायती रहे और

उन्होंने विचारधारा को अपने ऊपर कभी हावी नहीं होने दिया। वामपंथी विचारधारा के साथ जुड़े होने के साथ-साथ वे मानवीय मूल्यों को कभी आंखो से ओझल नहीं करते थे। आपाधापी और उठापटक के युग में भीष्म साहनी का व्यक्तित्व बिल्कुल अलग था। उन्हें उनके लेखन के लिए तो स्मरण किया ही जाएगा लेकिन अपनी सहृदयता के लिए वे चिरस्मरणीय रहेंगे। भीष्म साहनी हिन्दी फ़िल्मों के जाने माने अभिनेता बलराज साहनी के छोटे भाई थे। उन्हें १९७५ में तमस के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार, १९७५ में शिरोमणि लेखक अवार्ड (पंजाब सरकार), १९८० में एफ्रो एशियन राइटर्स असोसिएशन का लोटस अवार्ड, १९८३ में सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड तथा १९९८ में भारत सरकार के पद्मभूषण अलंकरण से विभूषित किया गया। उनके उपन्यास तमस पर १९८६ में एक फिल्म का निर्माण भी किया गया था।

प्रमुख रचनाएँ:उपन्यास - झरोखे, तमस, बसंती, मय्यादास की माड़ी, कुन्तो, नीलू निलिमा नीलोफर,कहानी संग्रह- मेरी प्रिय कहानियां, भाग्यरेखा, वांगचू, निशाचर,नाटक- हानूश (१९७७), माधवी (१९८४), कबिरा खड़ा बजार में (१९८५), मुआवज़े (१९९३),आत्मकथा - बलराज माय ब्रदर,बालकथा- गुलेल का खेल आदि |

घर मे हम तीन ही व्यक्ति रहते हैं–माँ, पिताजी और मैं। पर पिताजी कहते हैं कि यह घर सराय बना हुआ है। हम तो जैसे यहाँ मेहमान हैं, घर के मालिक तो कोई दूसरे ही हैं।

आँगन में आम का पेड़ है। तरह-तरह के पक्षी उस पर डेरा डाले रहते हैं। जो भी पक्षी पहाड़ियों-घाटियों पर से उड़ता हुआ दिल्ली पहुँचता है,

पिताजी कहते हैं वही सीधा हमारे घर पहुँच जाता है, जैसे हमारे घर का पता लिखवाकर लाया हो। यहाँ कभी तोते पहुँच जाते हैं, तो कभी कौवे और कभी तरह-तरह की गौरैयाँ। वह शोर मचता है कि कानों के पर्दे फट जाएँ, पर लोग कहते हैं कि पक्षी गा रहे हैं!

घर के अंदर भी यही हाल है। बीसियों तो चूहे बसते हैं। रात-भर एक कमरे से दूसरे कमरे में भागते फिरते हैं। वह धमा-चौकड़ी मचती है कि हम लोग ठीक तरह से सो भी नहीं पाते। बर्तन गिरते हैं, डिब्बे खुलते हैं, प्याले टूटते हैं। एक चूहा अँगीठी के पीछे बैठना पसंद करता है, शायद बूढ़ा है उसे सर्दी बहुत लगती है। एक दूसरा है जिसे बाथरूम की टंकी पर चढ़कर बैठना पसंद है। उसे शायद गर्मी बहुत लगती है। बिल्ली हमारे घर में रहती तो नहीं मगर घर उसे भी पसंद है और वह कभी-कभी झाँक जाती है। मन आया तो अंदर आकर दूध पी गई, न मन आया तो बाहर से ही 'फिर आऊँगी' कहकर चली जाती है। शाम पड़ते ही दो-तीन चमगादड़ कमरों के आर-पार पर फैलाए कसरत करने लगते हैं। घर में कबूतर भी हैं। दिन-भर 'गुटर-गूँ गुटर-गूँ' का संगीत सुनाई देता रहता है। इतने पर ही बस नहीं, घर में छिपकलियाँ भी हैं और बर्रे भी हैं और चींटियों की तो जैसे फ़ौज ही छावनी डाले हुए है।

अब एक दिन दो गौरैया सीधी अंदर घुस आईं और बिना पूछे उड़-उड़कर मकान देखने लगीं। पिताजी कहने लगे कि मकान का निरीक्षण कर रही हैं कि उनके रहने योग्य है या नहीं। कभी वे किसी रोशनदान पर जा बैठतीं, तो कभी खिड़की पर। फिर जैसे आई थीं वैसे ही उड़ भी गईं। पर दो दिन बाद हमने क्या देखा कि बैठक की छत में लगे पंखे के गोले में

उन्होंने अपना बिछावन बिछा लिया है, और सामान भी ले आईं हैं और मज़े से दोनों बैठी गाना गा रही हैं। ज़ाहिर है, उन्हें घर पसंद आ गया था।

माँ और पिताजी दोनों सोफ़े पर बैठे उनकी ओर देखे जा रहे थे। थोड़ी देर बाद माँ सिर हिलाकर बोलीं, अब तो ये नहीं उड़ेंगी। पहले इन्हें उड़ा देते, तो उड़ जातीं। अब तो इन्होंने यहाँ घोंसला बना लिया है।

इस पर पिताजी को ग़ुस्सा आ गया। वह उठ खड़े हुए और बोले, देखता हूँ ये कैसे यहाँ रहती हैं! गौरैयाँ मेरे आगे क्या चीज़ हैं! मैं अभी निकाल बाहर करता हूँ।

छोड़ो जी, चूहों को तो निकाल नहीं पाए, अब चिड़ियों को निकालेंगे! माँ ने व्यंग्य से कहा।

माँ कोई बात व्यंग्य में कहें, तो पिताजी उबल पड़ते हैं वह समझते हैं कि माँ उनका मज़ाक़ उड़ा रही हैं। वह फ़ौरन उठ खड़े हुए और पंखे के नीचे जाकर ज़ोर से ताली बजाई और मुँह से 'श...शू' कहा, बाँहें झुलाई, फिर खड़े-खड़े कूदने लगे, कभी बाहें झुलाते, कभी 'श...शू' करते।

गौरैयों ने घोंसले में से सिर निकालकर नीचे की ओर झाँककर देखा और दोनों एक साथ 'चीं-चीं करने लगीं। और माँ खिलखिलाकर हँसने लगीं।

पिताजी को ग़ुस्सा आ गया, इसमें हँसने की क्या बात है?

माँ को ऐसे मौक़ों पर हमेशा मज़ाक़ सूझता है। हँसकर बोली, चिड़ियाँ एक दूसरी से पूछ रही हैं कि यह आदमी कौन है और नाच क्यों रहा है?

तब पिताजी को और भी ज़्यादा ग़ुस्सा आ गया और वह पहले से भी ज़्यादा ऊँचा कूदने लगे।

गौरैयाँ घोंसले में से निकलकर दूसरे पंखे के डैने पर जा बैठीं। उन्हें पिताजी का नाचना जैसे बहुत पसंद आ रहा था। माँ फिर हँसने लगीं, ये निकलेंगी नहीं, जी। अब इन्होंने अंडे दे दिए होंगे।

निकलेंगी कैसे नहीं? पिताजी बोले और बाहर से लाठी उठा लाए। इसी बीच गौरैयाँ फिर घोंसले में जा बैठी थीं। उन्होंने लाठी ऊँची उठाकर पंखे के गोले को ठकोरा। 'चीं-चीं' करती गौरैयाँ उड़कर पर्दे के डंडे पर जा बैठीं।

इतनी तकलीफ़ करने की क्या ज़रूरत थी। पंखा चला देते तो ये उड़ जातीं। माँ ने हँसकर कहा।

पिताजी लाठी उठाए पर्दे के डंडे की ओर लपके। एक गौरैया उड़कर किचन के दरवाज़े पर जा बैठी। दूसरी सीढ़ियोंवाले दरवाज़े पर।

माँ फिर हँस दी। तुम तो बड़े समझदार हो जी, सभी दरवाज़े खुले हैं और तुम गौरैयों को बाहर निकाल रहे हो। एक दरवाज़ा खुला छोड़ो, बाक़ी दरवाज़े बंद कर दो। तभी ये निकलेंगी।

अब पिताजी ने मुझे झिड़ककर कहा, तू खड़ा क्या देख रहा है? जा, दोनों दरवाज़े बंद कर दे!

मैंने भागकर दोनों दरवाज़े बंद कर दिए केवल किचनवाला दरवाज़ा खुला रहा।

पिताजी ने फिर लाठी उठाई और गौरैयों पर हमला बोल दिया। एक बार तो झुलती लाठी माँ के सिर पर लगते-लगते बची। चीं-चीं करती चिड़ियाँ कभी एक जगह तो कभी दूसरी जगह जा बैठतीं। आख़िर दोनों किचन की ओर खुलने वाले दरवाज़े में से बाहर निकल गईं। माँ तालियाँ बजाने लगीं। पिताजी ने लाठी दीवार के साथ टिकाकर रख दी और छाती फैलाए कुर्सी पर आ बैठे।

आज दरवाज़े बंद रखो उन्होंने हुक्म दिया। एक दिन अंदर नहीं घुस पाएँगी, तो घर छोड़ देंगी।

तभी पंखे के ऊपर से चीं-चीं की आवाज़ सुनाई पड़ी। और माँ खिलखिलाकर हँस दी। मैंने सिर उठाकर ऊपर की ओर देखा, दोनों गौरैया फिर से अपने घोंसले में मौजूद थीं।

दरवाज़े के नीचे से आ गई हैं, माँ बोलीं।

मैंने दरवाज़े के नीचे देखा। सचमुच दरवाज़ों के नीचे थोड़ी-थोड़ी जगह ख़ाली थी।

पिताजी को फिर ग़ुस्सा आ गया। माँ मदद तो करती नहीं थीं, बैठी हँसे जा रही थीं।

अब तो पिताजी गौरैयों पर पिल पड़े। उन्होंने दरवाज़ों के नीचे कपड़े ठूँस दिए ताकि कहीं कोई छेद बचा नहीं रह जाए। और फिर लाठी झुलाते हुए उन पर टूट पड़े। चिड़ियाँ चीं-चीं करती फिर बाहर निकल गईं। पर थोड़ी ही देर बाद वे फिर कमरे में मौजूद थीं। अबकी बार वे रोशनदान में से आ गई थी जिसका एक शीशा टूटा हुआ था।

देखो–जी, चिड़ियों को मत निकालो, माँ ने अबकी बार गंभीरता से कहा, अब तो इन्होंने अंडे भी दे दिए होंगे। अब ये यहाँ से नहीं जाएँगी। क्या मतलब? मैं क़ालीन बरबाद करवा लूँ? पिताजी बोले और कुर्सी पर चढ़कर रोशनदान में कपड़ा ठूँस दिया और फिर लाठी झुलाकर एक बार फिर चिड़ियों को खदेड़ दिया। दोनों पिछले आँगन की दीवार पर जा बैठीं।

इतने में रात पड़ गई। हम खाना खाकर ऊपर जाकर सो गए। जाने से पहले मैंने आँगन में झाँककर देखा, चिड़ियाँ वहाँ पर नहीं थीं। मैंने समझ लिया कि उन्हें अक्ल आ गई होगी। अपनी हार मानकर किसी दूसरी जगह चली गई होंगी।

दूसरे दिन इतवार था। जब हम लोग नीचे उतरकर आए तो वे फिर से मौजूद थीं और मज़े से बैठी मल्हार गा रही थीं। पिताजी ने फिर लाठी उठा ली। उस दिन उन्हें गौरैयों को बाहर निकालने में बहुत देर नहीं लगी।

अब तो रोज़ यही कुछ होने लगा। दिन में तो वे बाहर निकाल दी जातीं पर रात के वक़्त जब हम सो रहे होते, तो न जाने किस रास्ते से वे अंदर घुस आतीं।

पिताजी परेशान हो उठे। आख़िर कोई कहाँ तक लाठी झुला सकता है? पिताजी बार-बार कहें, मैं हार मानने वाला आदमी नहीं हूँ। पर आख़िर वह भी तंग आ गए थे। आख़िर जब उनकी सहनशीलता चुक गई तो वह कहने लगे कि वह गौरैयों का घोंसला नोचकर निकाल देंगे। और वह फ़ौरन ही बाहर से एक स्टूल उठा लाए।

घोंसला तोड़ना कठिन काम नहीं था। उन्होंने पंखे के नीचे फ़र्श पर स्टूल रखा और लाठी लेकर स्टूल पर चढ़ गए। किसी को सचमुच बाहर निकालना हो, तो उसका घर तोड़ देना चाहिए, उन्होंने ग़ुस्से से कहा।

घोंसले में से अनेक तिनके बाहर की ओर लटक रहे थे, गौरैयों ने सजावट के लिए मानो झालर टाँग रखी हो। पिताजी ने लाठी का सिरा सूखी घास के तिनकों पर जमाया और दाईं ओर को खींचा। दो तिनके घोंसले में से अलग हो गए और फरफराते हुए नीचे उतरने लगे।

चलो, दो तिनके तो निकल गए, माँ हँसकर बोलीं, अब बाक़ी दो हज़ार भी निकल जाएँगे!

तभी मैंने बाहर आँगन की ओर देखा और मुझे दोनों गौरैयाँ नज़र आईं। दोनों चुपचाप दीवार पर बैठी थीं। इस बीच दोनों कुछ-कुछ दुबला गई थीं, कुछ-कुछ काली पड़ गई थीं। अब वे चहक भी नहीं रही थीं।

अब पिताजी लाठी का सिरा घास के तिनकों के ऊपर रखकर वहीं रखे-रखे घुमाने लगे। इससे घोंसले के लंबे-लंबे तिनके लाठी के सिरे के साथ लिपटने लगे। वे लिपटते गए, लिपटते गए, और घोंसला लाठी के इर्द-गिर्द खिंचता चला आने लगा। फिर वह खींच-खींचकर लाठी के सिरे के इर्द-गिर्द लपेटा जाने लगा। सूखी घास और रूई के फाहे, और धागे और थिगलियाँ लाठी के सिरे पर लिपटने लगीं। तभी सहसा ज़ोर की आवाज़ आई, चीं-चीं, चीं-चीं!

पिताजी के हाथ ठिठक गए। यह क्या? क्या गौरैयाँ लौट आईं हैं? मैंने झट से बाहर की ओर देखा। नहीं, दोनों गौरैयाँ बाहर दीवार पर गुमसुम बैठी थीं।

चीं-चीं, चीं-चीं! फिर आवाज़ आई। मैंने ऊपर देखा। पंखे के गोले के ऊपर से नन्हीं-नन्हीं गौरैयाँ सिर निकाले नीचे की ओर देख रही थी और चीं-चीं किए जा रही थीं। अभी भी पिताजी के हाथ में लाठी थी और उस पर लिपटा घाँसले का बहुत-सा हिस्सा था। नन्हीं-नन्हीं दो गौरैयाँ! वे अभी भी झाँके जा रही थीं और ची-चीं करके मानो अपना परिचय दे रही थीं, हम आ गई हैं। हमारे माँ-बाप कहाँ हैं?

मैं अवाक् उनकी ओर देखता रहा। फिर मैंने देखा, पिताजी स्टूल पर से नीचे उतर आए हैं। और घोंसले के तिनकों में से लाठी निकालकर उन्होंने लाठी को एक ओर रख दिया है और चुपचाप कुर्सी पर आकर बैठ गए हैं। इस बीच माँ कुर्सी पर से उठीं और सभी दरवाज़े खोल दिए। नन्हीं चिड़ियाँ अभी भी हाँफ-हाँफकर चिल्लाए जा रही थीं और अपने माँ-बाप को बुला रही थीं।

उनके माँ-बाप झट-से उड़कर अंदर आ गए और चीं-चीं करते उनसे जा मिले और उनकी नन्हीं-नन्हीं चोंचों में चुग्गा डालने लगे। माँ-पिताजी और मैं उनकी ओर देखते रह गए। कमरे में फिर से शोर होने लगा था, पर अबकी बार पिताजी उनकी ओर देख-देखकर केवल मुसकरातेरहे।

*****

वैज्ञानिक शब्दावली

(Scientific Terminology)

1.	Radiology	-	विकिरण विज्ञान
2.	Neurology	-	तात्रिक विज्ञान
3.	Rest	-	विराम
4.	Motion	-	गति
5.	Mathematics	-	गणित
6.	Final	-	अंत
7.	Linear	-	रेखीय
8.	Random	-	अनियमित
9.	Circular	-	व्रुतीय
10.	Convection	-	संवहन
11.	Radiation	-	विकिरण
12.	Bacteria	-	जीवाणु
13.	Virus	-	विषाणु
14.	Sexual	-	लैंगिक
15.	Tissue	-	उत्तक
16.	Fangus	-	कवक
17.	Biology	-	जीव विज्ञान
18.	Medical	-	चिकित्सा
19.	Living	-	सजीव
20.	Chemistry	-	रसयन शासत्र
21.	Reproduction	-	प्रजनन
22.	Characteristic	-	लक्षण
23.	Metabolism	-	उपापचय

24.	Fat	-	वसा
25.	Ovary	-	अंडाशय
26.	Diabetes	-	मधुमेह
27.	Hair fall	-	बालों का झडना
28.	Acute	-	तिव्र
29.	Sericulture	-	रेशम कीट विज्ञान
30.	Research	-	अनुसंधान
31.	Veterinary Svience	-	प्राणी विज्ञान
32.	Vaccination	-	टिकाकरण
33.	Medicine	-	औषधि, दवा
34.	Spinal Cord	-	रीढ़ की हड्डी
35.	First Aid	-	प्रथम चिकित्सा
36.	Genetics	-	आनुवंशिकी
37.	Animal Husbandary	-	पशु पालन
38.	Chemical process	-	रासायनिक प्रक्रिया
39.	Bird Sanctuary	-	पक्षीधाम
40.	Microscop	-	सूक्ष्मदर्शी
41.	Laboratory	-	प्रयोगालय, प्रयोगशाला
42.	Bio-Chemistry	-	जीव रसायन
43.	Aircraft	-	वायुयान
44.	Healthcare	-	स्वास्थ्य केंद्र
45.	Sericulture	-	रेशम विज्ञान
46.	Minerals	-	खनिज
47.	Algebra	-	बीज गणित
48.	Theory	-	सिद्धांत
49.	Pigment	-	वर्णक
50.	Resistance	-	प्रतिरोधक